आजकल

नाटक 'दरवाजे खोल दो' का सफल मंचन

मृदुल जोशी

सहारनपुर—जनपद की सुप्रसिद्ध संस्था नाट्य के तृतीय वार्षिकोत्सव पर स्थानीय आशा मार्डन स्कूल के खुले मंच पर कृष्ण चन्द कृत नाटक "दरवाजे खोल दो" का सफल मंचन श्री विजेश जोशी के निर्देशन में किया गया। समारोह की अध्यक्षता श्री एल० एम० पंत ने की। जिलाधीश श्री के० एन० सिंह मुख्य अतिथि थे।

आज की सुलगती समस्या राष्ट्रीय एकता एवं साम्प्रदायिक सद्भाव की प्रेरणा देता हुआ उक्त नाटक अपने उद्देश्य में सफल रहा। भारतीय संविधान की दृष्टि से सभी व्यक्ति, धर्म, रंग, भाषा के भेद से ऊपर एक समान हैं। कभी-कभी स्वार्थवश यह विटिष्बा चेतना विखंडित भी हो जाती है, भेदभाव व्यक्ति की चेतना पर छा जाता है और अपना धर्म जाति ही उसको महान लगने लगती हैं। यही भावना "दरवाजे खोल दो" की मूल चेतना है। नाटक जिस भावना से लिखा गया उसी भावना से कलाकारों ने उसे जिया भी। अभिनय की दृष्टि से जितेन्द्र तायल, चांद दुर्रानी प्रवेश धवन, शम्स तबरेज, कु० मंजीत ओबराय नाटक के अत्यन्त सफल कलाकार रहे। सूत्रधार के रूप मे विजेश जोशी प्रभावशाली सिद्ध हुए। नवनीत शर्मा, राज वर्मा, राजीव सिंगल, अनिल भारद्वाज व सरदार नरेन्द्र भाटिया अन्य सफल कलाकार रहे। टी० के० अग्रवाल का प्रकाश संयोजना नाटक की जान थी तो मंच परिकल्पना उसके प्राण। आधुनिक राजनीतिक और सामाजिक संदर्भों में नाटक अपने उद्देश्य में पूर्णसफल रहा।

7/1043, जोड़ कुंआ सहारनपुर-247001

संस्कृत नाटक

"पंडितराजीयम्"

Rs 59 —रज्जना शर्मा,

दिल्ली में संस्कृत—नाटक अति प्रिय हो रहे हैं जिसका ताजा प्रमाण है कुछ दिन पहले श्रीराम—संस्कृत कला—केन्द्र के प्रेक्षागृह में प्रस्तुत "पंडितराजीयम" के दर्शकों की बहुत बड़ी उपस्थिति।

नाटक की भाषा सहज और सरल थी, जिसको "श्रुतिमधुर" भी कह सकते हैं। हिन्दी जानने वाले दर्शक भी इसे अच्छी तरह समझ पा रहे थे।

"पंडितराजीयम" के लगभग सभी कलाकारों ने बहुत कुशलता के साथ अपनी-अपनी भूमिका निभायी, जिसके लिए वे अभिनन्दनीय हैं। पंडितराज जगन्नाथ की भूमिका में बलदेवानन्द सागर तथा सम्राज्ञी मुमताज के रूप में शशिबाला विशेष रूप से उल्लेखनीय एवं साधुवाद के पात्र हैं।

नाटक का कथानक-मुगल सम्राट शाहजहां के शासन काल से सम्बन्धित है। "पंडितराज" की उपाधि से विभूषित कवि जगन्नाथ शाहजहां की रूपसी धर्मपुत्री लवंगी से प्रेम करते हैं। शाहजहां उन्हें विवाह की अनुमति देते हैं किन्तु समाज कवि का बहिष्कार करता है। लवंगी इसी दुःख में घुल-घुल कर संसार से सदा के लिए विदा लेती है और पंडितराज वाराणसी आकर ज्ञान-साधना में शेष जीवन व्यतीत करते हैं।

मंच-सज्जा अति रमणीय थी। छोटेलाल जी ने अपने मधुर संगीत एवं स्वर-लालित्य से इसको एक उत्कृष्ट मन्च-प्रस्तुति बना दिया है। यदि इसकी अन्य भी आवृत्तियां हों तो निःसंदेह संस्कृत के अनुरागियों को उत्तम लाभ मिलेगा।

प्रस्तुति—देववाणी परिषद, लेखक—डा० रमाकान्त शुक्ल निर्देशिका—कमलिनी दत्त,

36, पटौदी भवन, नई दिल्ली—110001,

आजकल

आधुनिक साहित्य एवं संस्कृति का संवाहक मासिक

वर्ष : 39; अंक : 1; पूर्णांक : 465; मई : 1983
(बैशाख-ज्येष्ठ 1905)

'आजकल' का चंदा : एक प्रति 1 रुपया, वार्षिक 10 रुपये, द्विवार्षिक 18 रुपये तथा त्रिवार्षिक 25 रुपये मात्र। (छात्रों तथा अध्यापकों के लिए चंदे में दस प्रतिशत की विशेष छूट। इसके लिए प्रमाणपत्र भेजना आवश्यक है) 'आजकल' के नियमित ग्राहकों को, प्रकाशन विभाग की 5 रुपये या अधिक मूल्य की पुस्तकें खरीदने पर 20 प्रतिशत छूट दी जाती है।

विदेश में : एक प्रति : 30 सेंट या 15 पेंस; वार्षिक : 3 डालर या 1.50 पौंड; द्विवार्षिक : 5-40 डालर या 2.70 पौंड; त्रिवार्षिक : 7-50 डालर या 3.75 पौंड।

चंदे एवं विज्ञापन तथा पत्रिका न मिलने की शिकायत भेजने का पता : व्यापार व्यवस्थापक, पटियाला हाउस, नई दिल्ली। ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें।

संपादकीय पत्र-व्यवहार : संपादक 'आजकल' (हिंदी), पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 (टेलीफोन : 387069)

2. संपादकीय

लेख :

3. सामाजिक यथार्थ के कुशल चितेरे फणीश्वर नाथ रेणु —कृष्णानंद कृष्ण
5. महाकवि फ़िराक़ : कुछ यादें कुछ असर —डा० अंजनी कुमार श्रीवास्तव
7. मुगल सम्राट बहादुरशाह ज़फर —उषा उर्वंश
11. चैत हे सखी सब वन —शम्भु नाथ मिश्र
22. समकालीन रंगकर्म का नया आयाम नुक्कड़ नाटक —जयदेव तनेजा
32. योगीराज आचार्य भणसाली जी —कृ०गो० वानखड़े गुरुजी
42. साहित्य अकादमी पुरस्कार समारोह —प्रवीण उपाध्याय

बातचीत

24. तमिल लेखक अखिलन से बातचीत —आरसु
26. पद्म श्री वैक्कम मुहम्मद बशीर से भेंट —तत्तोत्त बालकृष्णन

कहानी

13. क्षितिज कहां ? —अभिमन्यु अनत
29. विश्वामित्र का आपद्धर्म —सीताराम खोड़ाबल
35. ध्वनि रूपक 'लड़ाई' —प्रताप सहगल
45. स्वागत —महेश चन्द्र जोशी
15. कविताएं
सन्यास स्वप्न, सुगंध के सार्थवाह, तारे, तस्वीरें तुम —भवानी प्रसाद मिश्र
प्रदीप पंत, अब्दुल बिस्मिल्लाह, डा० रामजी मिश्र, सुमन शर्मा, आदित्य श्रीवास्तव, अनिल खम्परिया, सुरेश विमल, विद्यानंदन राजीव, और भानु चन्द्रमधु पुरी की कविताएं।
44. सवाली दस्तावेज (कविता) —जयप्रकाश बागी
49. पुस्तक समीक्षा
53. वातायन
55. प्रतिक्रियाएं

संपादक	: नरेन्द्र सिन्हा
सहायक संपादक	: प्रवीण उपाध्याय
उप-संपादक	: कंवर चन्द जैन
व्यापार व्यवस्थापक	: एस०एल० जायसवाल
सहायक व्यवस्थापक	: लेखराज बतरा
सहायक निदेशक (उत्पादन)	: के०आर० कृष्णन
आवरण सज्जा	: अलका नैय्यर

समाचार : बदलता संदर्भ

कुत्ता अगर आदमी को काट ले तो समाचार नहीं बनता' समाचार तब बनता है जब आदमी कुत्ते को काट ले—एक अमरीकी पत्रकार की यह उक्ति सारे पत्रकार जगत में बहुचर्चित रही है और समाचार क्या है यह समझने-समझाने के लिए अकसर प्रयुक्त होती आई है । यदि इस उक्ति के गूढ़ार्थ पर ध्यान दें तो पता चलेगा कि जो कुछ स्वाभाविक और सामान्य रूप से घटित हो उससे समाचार नहीं बनता, समाचार बनने के लिए कुछ अस्वाभाविक और असामान्य का घटित होना जरूरी है । इसका एक और भी निहित अर्थ है कि जो असामान्य होगा वह उत्तेजक भी होगा और उससे सनसनी भी फैलेगी । समाचार के बारे में दूसरा सिद्धान्त यह है कि जो कुछ नया हो, जो कुछ भी नया घटित हो वह समाचार होता है । सारे विश्व के पत्रकार अब तक इन्हीं दो निर्देशक सिद्धांतों का अनुसरण करते आए हैं । यही कारण है कि पत्रकार अब तक उत्तेजक अथवा सनसनीखेज घटनाओं पर अपना ध्यान केन्द्रित करते आए हैं और ऐसे ही समाचारों से समाचार पत्रों के पृष्ठ रंगे रहते हैं ।

लेकिन क्या जो कुछ नया होता है, जो कुछ उत्तेजक होता है, वही समाचार है ? क्या हत्या और अन्य अपराधों तथा राजनीतिक उथल-पुथल से ही समाचार बनता है ? क्या समय नहीं आ गया है जब हम यह ठहरकर सोचें कि दुनिया के अविकसित और अर्धविकसित देशों में आर्थिक और सामाजिक परिवर्तनों के माध्यम से जो मौन क्रान्ति हो रही है उसमें भी समाचार के तत्व हैं । यह क्रान्ति कोई ऐसी चीज नहीं जिसे हम अपनी आंखों से देख सकें या इससे किसी प्रकार की उत्तेजना फैले । इसकी नवीनता के दर्शन तो तभी होंगे जब यह क्रान्ति पूरी हो जाए । यह समग्र क्रान्ति अभी घटित होने की प्रक्रिया में है और इसका परिणाम भी ऐसा नहीं कि परिलक्षित हो सके । परन्तु वास्तविकता यह है कि इससे इन देशों के निवासियों का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन अपरिलक्षित रूप से प्रभावित हो रहा है । वस्तुत: इन देशों के लिए समाचार का अर्थ बदल गया है, इसकी परिभाषा बदल गई है । इनके लिए समाचार के रूप में विकास गतिविधियां ही मुख्य रूप से महत्वपूर्ण हो गई हैं—ऐसा इसलिए कि इनसे इनका समग्र जीवन प्रभावित हो रहा है, परिवर्तित हो रहा है ।

प्रसन्नता की बात है कि इस ओर संयुक्त राष्ट्र संघ तथा उसकी एजेंसियों का ध्यान आज से प्राय: 10 वर्ष पहले से ही गया है । और वह एक ऐसी अन्तराष्ट्रीय सूचना एवं संचार व्यवस्था का विकास करने के लिए प्रयत्नशील हैं जो समाचार के इस पहलू पर विशेष रूप से आधृत हो । यह स्वाभाविक ही है कि इसमें तीसरी दुनियां के देश, दूसरे शब्दों में गुट निरपेक्ष राष्ट्रों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं और निभा रहे हैं । इस प्रस्तावित अन्तराष्ट्रीय सूचना एवं संचार व्यवस्था के अन्तर्गत विकास गतिविधियों को तथा इनमें और तेजी लाने के लिए विकसित देशों एवं तीसरी दुनियां के देशों के बीच और इन देशों के परस्पर सहयोग को सर्वाधिक महत्व दिया जाएगा ।

गुट निरपेक्ष राष्ट्रों ने परस्पर सहयोग द्वारा विशेष अन्तर्राष्ट्रीय समाचार एजेन्सी पूल की स्थापना करके इस दिशा में जो पहलकदमी की है है वह सर्वथा अभिनन्दनीय है । इसकी स्थापना का मुख्य उद्देश्य यह है कि समाचार वितरण के क्षेत्र में पश्चिमी राष्ट्रों की समाचार एजेन्सियों का एकाधिकार होने से एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के अर्द्धविकसित और अविकसित देशों के समाचार के प्राय: उपेक्षित रह जाने के कारण जो असन्तुलन है उसे दूर किया जाये । ये पश्चिमी एजेन्सियां उपरोक्त निर्देशक सिद्धान्तों के अनुसार ही आचरण करती हैं जिससे तीसरी दुनिया के देशों की विकास गतिविधियां उपेक्षित रह जाती हैं और इन देशों के निवासियों को अपने देशों में चल रही विकास गतिविधियों के माध्यम से हो रही मौन क्रान्ति का पता नहीं चल पाता । पूल की स्थापना से समाचार वितरण के क्षेत्र का असन्तुलन कुछ दूर तो हुआ है लेकिन अभी भी सम्प्रेषण सुविधाओं की कमी तथा कई देशों में संचार सुविधाओं के अपर्याप्त विकास के कारण बहुत सी कमियां रह गई हैं जिसके पूर्ण होने पर ही यह सार्थक हो पाएगा ।

सन् 1979 में हवाना में सम्पन्न गुट निरपेक्ष राष्ट्रों के शिखर सम्मेलन ने नई अन्तराष्ट्रीय सूचना एवं संचार व्यवस्था के विकास में गुट निरपेक्ष राष्टों के प्रयासों की सफलता पर सन्तोष व्यक्त किया था और शेष राष्ट्रों से इस लक्ष्य को प्रकट करने के लिए दुगने उत्साह से काम करने की अपील की थी । वस्तुत: यूनेस्कों ने अन्तराष्ट्रीय एवं सूचना एवं संचार व्यवस्था के सबंध में जो प्रस्ताव स्वीकृत किए हैं उसकी स्वीकृति का बहुत कुछ श्रेय गुट निरपेक्ष राष्ट्रों को ही है । पिछले महीने नई दिल्ली में सम्पन्न 7वें गुट निरपेक्ष राष्ट्र शिखर सम्मेलन ने भी विकासशील और अर्द्धविकसित देशों से प्रस्तावित नयी अन्तराष्ट्रीय सूचना एवं संचार व्यवस्था की स्थापना के लिए अतिरिक्त साधन जुटाने और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए पूण रूप से सहयोग करने की अपील की है । सम्मेलन में इस विषय पर जो चर्चा हुई उसमें सभी प्रतिनिधियों ने बड़ा उत्साह प्रदर्शित किया था । लेकिन पश्चिम के विकसित देश इस प्रस्तावित सूचना और सचार व्यवस्था की स्थापना का आरम्भ से ही विरोध करते आए हैं । यह विरोध, ये बाधाएं आलघनीय नहीं हैं और आशा है कि इस लक्ष्य की शीघ्र पूर्ति हो सकेगी ।

सामाजिक यथार्थ के कुशल चितेरे फणीश्वर नाथ रेणु

हिन्दी कहानी में प्रेमचन्द के साथ एक ऐसा बदलाव आया जो एक बारगी हिन्दी कहानी के अपरिचित परिदृश्य को बदल गया। इसके पहले हिन्दी कहानी का परिदृश्य अप्यारी और फैन्टास्टिक था। जबकि प्रेमचन्द के साथ यह लोक चेतना से जुड़ा। यह किसी भी महान कलाकार की बड़ी उपलब्धि होती है कि वह अपरिचित को परिचित और परिचित को नयापन सौंपता है। प्रेमचन्द में यह सब कुछ इतनी बहुलता के साथ है कि वह उन्हें अपने समय का ही नहीं, आने वाले समय का भी महान् कलाकार बनाता है। इनके कथा-साहित्य का ग्रामीण परिदृश्य उसकी समस्यायें, सुख-दुख, हर्ष-विषाद रीति-नीति सभी आदर्शवादी चेतना के साथ बिंबित हुए। गांव के प्रति इनके मन में आशावादी विचार थे। इस बदलते परिदृश्य के साथ इनके कथा-साहित्य में एक साथ अनेकों ऐसे पात्र आये जो अपने परिवेश से जुड़े हुए थे, जो समाज की ऐसी इकाई थे जिनकी ओर ध्यान देना इसके पहले कोई भी कलाकार गवारा नहीं करता था। आज के मुहावरे में यह वही आम आदमी था जो हर दिन जीवन और मौत के दो कगारों को छूता हुआ जी मर रहा था।

प्रेमचन्द के साथ यह ग्रामीण परिदृश्य और उसमें सांस लेते ये चरित्र आगे कथा साहित्य में आये, लेकिन किसी नारे और सिद्धांत के माध्यम भर होकर। पहली बार आजादी के बाद सही रूप में गांव के ये सीधे-सादे लेकिन एकदम भोले नहीं, हिन्दी कथा साहित्य में "रेणु" के साथ आये। इसके पीछे कोई सिद्धांत, कोई विचार कोई नारेबाजी नहीं थी। गांव के ये आदमी अपने सही रूप में, अपने परिवेशगत वैशिष्ट्य के साथ प्रेमचन्द से भी अधिक इस अर्थ में कि जहां प्रेमचन्द के चरित्र किसी आदर्श की बैशाखी पर टंगे नजर आते हैं, वहां रेणु की कहानियों के चरित्र सामाजिक यथार्थ के जीते-जागते चरित्र हैं। आज आम आदमी नारे के दम पर प्रचालित है जो प्रच्छन्न रूप में किसी की राजनीति का अंग है। उससे सर्वथा भिन्न रेणु की कहानियों के पात्र सही आम आदमी हैं जो किसी के लिए नहीं अपने लिए हैं, उनकी अपनी दुनिया है, उनका अपना यथार्थ है जिसे वे जीते हैं, भोगते हैं। रेणु ने एक बार कहा था—"नारेबाजी से आम आदमी को नहीं प्रतिष्ठित किया जा सकता है। फिर इसके लिए आन्दोलन की भी जरूरत नहीं होती है। आज आम आदमी की दुहाई देना एक फैशन हो गया है। लेखक आम आदमी को ढूंढ रहा है, जबकि लेखक को आम आदमी को खोजने की कोशिश नहीं करनी चाहिए, क्योंकि लेखक स्वयं आम आदमी है। यदि वह आम आदमी है तो स्वयं उसकी बात-आम आदमी की बात होनी चाहिए। यदि किसी लेखक के लेखन में ऐसा नहीं लगता तो इसका सीधा अर्थ है। लेखक में ईमानदारी नहीं है"—ऐसा वे मानते थे।

रेणु अपने कथा पात्रों से सीधे जुड़े हुए थे। अपने पात्रों की समस्याओं से उनकी गहरी सम्पृक्ति थी, उनके परिवेश की इतनी तत स्पर्शी पहचान ही उनके कथा-पात्रों को जीवंतता दे पाई। उनके अपने गांव का यथार्थ, भित्तिक यथार्थ, उनके पात्रों को जो परिवेश सौंपता है वह स्वाभाविक और जीवंत हैं। यह कहना कि वे "यथार्थ का आभास" पैदा करने वाले कल्पना प्रवण शिल्पी थे, उनके ग्रामीण परिवेश को नहीं जानने का इजहार है।

रेणु की कहानियां यथार्थ का आभास नहीं ऐसा यथार्थ हैं जो किसी सिद्धांत-निरूपण का माध्यम नहीं होता। यदि अज्ञेय के शब्दों को उधार लें तो—उन्हीं के शब्दों में कह सकते हैं—

कृष्णानन्द कृष्ण

"हम आज उस परिवेश में रहते हैं जिसे लेकर भड़काई गयी एक लंबी धुंधली बहस ने दमघोंट बना रखा है और जिसमें कभी-कभार उठाई गयी हर आदमी की अद्वितीयता की बात भी रुंध जाती है, पर रेणु की कहानियां मानों सारी बहस और तर्कों के प्रत्युत्तर को अनावश्यक कर देती हैं, क्योंकि वे मांगे एक के बाद एक ऐसे चरित्र लगातार सरजती चलती हैं जो "आम" हैं, "मामूली" है। हमारे आसपास है, "समान्तर" है—और जो अद्वितीय है—एकान्त अद्वितीय··· मुझे तो कभी-कभी अवश्य ईर्ष्या होती थी उनके इन चरित्रों को अपने सामने पाकर—कितनी वैविध्य भरी, कितनी समृद्ध और कितनी खरी थी यह दुनिया—जिसे वह कितने निरायास ढ़ंग से सामने मूर्त्त कर देते थे—कैसी निरायास लेकिन कितनी अचूक और दृढ़ थी उनकी पकड़—सांई बाबा लोग सुना है हवा से चुटकी भर भभूत ले आते हैं, पर हर बार वही भभूत तो आती है। और रेणु थे कि हर बार हवा में हाथ बढ़ाते थे और पकड़ लाते थे एक नया अभूतपूर्व पंछी... और ऐसा पंछी जिसे देखकर हम कहें कि "इसे हमने पहले कभी नहीं देखा" लेकिन पहचानें कि "अरे इसे तो हम रोज देखते हैं।

यही तो होती है कारयित्री भावयित्री, रूपयित्री प्रतिमा जो पहचाने को नया और अजनबी को पहचान करती हुई सामने आ खड़ा करती है।" रेणु का कथा संसार ऐसे ही पात्रों से भरा है जो अपरिचित होते हुए भी परिचित और परिचित होते हुए भी अपरिचित हैं। उससे परिचय अपने आप में एक दिलचस्प अनुभव है।

रेणु ऐसे कथाकार हैं जो किसी कहानी को लिखने के पूर्व अपने चरित्रों को वर्षों अपने में जीते हैं, आत्मा के स्तर पर जब वे चरित्र पूर्ण और परिपक्व हो जाते हैं, सहज रूप में कहानी में उतरते चले आते हैं। वे अपने पात्रों की पूर्णता के लिये उसकी चरित्रगत बारीकियों में तो जाते ही हैं, किसी पात्र के व्यक्तित्व को सम्पूर्णता देने के लिए कई पात्रों का संयोग भी कर लेते हैं। इसके पात्र न तो किताबी है, न ही किसी सिद्धांत निरूपण के निर्जीव अस्त्र, वे जीवंत होने के साथ ही कथा परिवेश के संजीव अंग होते हैं। इनकी सभी कहानियां इसकी साक्षी हैं। यही कारण है कि इनके कथा पात्र हमारे परिचित और आत्मीय लगते हैं। और कभी-कभी तो उनकी कहानी अपनी कहानी लगने लगती है। उनकी कहानियों के पात्र गांव घर में रहने वाले सामान्य जन हैं, उनकी अपनी पीड़ा है सुख के विरल क्षण हैं जो अंधेरे में जुगनू की तरह जलकर बुझ जाते हैं और फिर वही अनंत अंधकार। 'रसप्रिया' कहानी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। लुंज हथेलियों वाला मृदंगिया अब अपने अतीत को मृदंग की तरह गले से लटकाये जीने को बाध्य है, जिसकी जिंदगी के सरगम टूट गये हैं। उसकी लय लयहीन हो गयी है। अपनी जिंदगी के मलवे के नीचे दबे जीने की यह बाध्यता उसे बार-बार कचोटती है "यह जीना भी कोई जीना है? निर्लज्जता है, और बेथरई की भी सीमा होती है।" रेणु आदमी के पराये होते क्षणों को आत्मीयता से संवेदनात्मक स्तर पर बांधने की सार्थक चेष्टा करते हैं, और यह रसप्रिया गाने वाले मृदंगिया की दर्द कथा नहीं होकर हजार-हजार मृदंगियों की कथा बन जाती है। यहीं रेणु सामाजिक यथार्थ पर एक तीखा व्यंग्य भी करते हैं, अब मृदंगिया परमानपुर के एक ब्राह्मण लड़के को प्यार से बेटा कह देता है तो सारे गांव के लड़के उसे पीटने पर आमादा हो जाते हैं, उसकी मृदंग फोड़ देते हैं। क्योंकि छोटी जात का होकर उसने बड़े जात के लड़के को बेटा कह दिया है। इसी सामाजिक वैषम्य में रेणु के कथा-पात्र जीते-मरते हैं। रेणु गांव के घूरे से ऐसे पात्रों को चुनते हैं जो सबके लिए अपरिचित और बेगाना होते हैं, लेकिन रेणु उन्हीं चरित्रों को ऐसी आत्मीय दृष्टि से देखते हैं कि वह एक बारगी लघु से महान बनकर हमारे सामने आ खड़ा होता है। "ठेस" कहानी का सिरचन ऐसा ही पात्र है। प्रेमचन्द की "कफन" कहानी के घीसू और माधव से यह मिलता हुआ होकर भी उससे भिन्न है। घीसू और माधव का स्वाभिमान सदा-सदा के लिए दफन हो चुका है जबकि 'सिरचन' एक ग्रामीण कलाकार है तथा कलाकार के स्वाभिमान से संबलित भी। दुनिया की निगाह में भले सिरचन मुफतखोर, कामचोर या चटोर हो लेकिन जब कहानी समाप्त होती है तो वह एक कलाकर होने के साथ ही वात्सल्य से भरा पिता दृष्टिगत होता है, जहां बेटी के लिए उसका स्वाभिमान गलकर उसकी कला में उदात्त बनकर निखर उठता है। रेणु जैसा अंतर्दृष्टि से सम्पन्न कलाकार ही सिरचन जैसे कथा-पात्र को जान समझ और सिरज सकता है। "लालपान की बेगम" के कथा-पात्र गांव के छोटे लोग हैं। जो आपस में लड़ते-झगड़ते और खुश होते हैं। बिरजू की मां, सहुआइन, जंगी की पतोहू ऐसे ही पात्र हैं जो एक क्षण पहले एक दूसरे का मुंह देखना नहीं चाहते लेकिन दूसरे ही क्षण एक दूसरे से लाड़-लड़ाते हैं। जो जंगी की पतोहू कुछ देर पहले बिरजू की मां पर व्यंग्य करती हुई कहती है—"फुआ-आ! सखेसितलमिटी (सर्वे सेटलमेंट) के हाकिम के बासा पर फलू छाप किनारी वाली साड़ी पहन के यदि तू भी भंटा की भेंटी चढ़ाती तो तुम्हारे नाम से भी दो-तीन बीघा धनहर जमीन का पर्चा कट जाता। फिर तुम्हारे घर भी आज दस मन सोनाबंग पाट होता, जोड़ा बैल खरीदता। फिर आगे नाथ और पीछे सैकड़ों पगहिया झूलती!" उसी जंगी की पतोहू को बिरजू की मां अपनी गाड़ी पर बैठ कर मेला दिखाने ले जाती है। यह गांव के आम आदमी का सहज व्यक्तित्व है जो एक क्षण के लिऐ कठोर होकर दूसरे क्षण ही स्नेह के ताप से पिघलकर बह जाता है। रेणु ऐसे चरित्रों के मर्मी व्यास हैं। ऐसी ही एक कहानी है "पंचलाइट" जो सामाजिक विद्रूप पर तो व्यंग्य करती ही है, ऐसे पात्रों को भी हमारे सामने उपस्थित करती है जो हमारे परिचित होने के बाद भी यहां आकर हमारे लिए एकाएक अपरिचित हो जाते हैं। और कहानी खत्म होते न होते पुनः हमारी अपनी लगने लगती है। सारी स्थितियां हमारी जानी-पहचानी लगने लगती हैं। सामान्य तथा भोले-भाले पात्र जहां हममें गुदगुदी पैदा करते हैं एक अव्यक्त अपनाये के बंधन में भी बांधते हैं। "तुमी एकला चलो रे" और "पुरानी कहानी: नया पाठ" जैसी कहानियों में आम आदमी की पीड़ा, संघर्ष और असहायता का मार्मिक उद्घाटन हुआ है यह गांव में रह रहे लोगों के शोषण का ऐसा दस्तावेज है जो गहरे तक दरका जाता है।

वैचारिक दृष्टि से रेणु की सामान्य कहानियों से थोड़ी अलग धरातल की कहानी है "उच्चाटन", जिसमें गांव की सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था का बेबाक चित्रण हुआ है और उसमें जीने को बाध्य चरित्रों को इतनी कुशलता से चित्रित किया गया है जो रेणु के कलाकार की यथार्थगत उपलब्धि है। मरकत महाजन और बूढ़ा मिसिर ग्रामीण महाजनी सभ्यता का प्रतिनिधि पात्र है, जो खून तो चूसता है मगर अहसास होने नहीं देता। वह अपने चरवाहों को या अपने मजदूरों को बंधुआ बनाकर रखता है। जानवरों की तरह पेश आता है, लेकिन ग्रामीण काइयांपन उसे समय के साथ बदलने का विवेक भी दे देता है, तभी वह

(शेष पृष्ठ 21 पर)

pen portrait — Rs 100/-

महाकवि फ़िराक : कुछ यादें कुछ असर

डा० अंजनी कुमार श्रीवास्तव

मार्च 1982 की तीसरी तारीख बड़ी बदनसीब बन कर आयी थी। पूरे वातावरण में एक अंधेरापन और एक अजीब सी खामोशी छा गयी थी। जमाने का एक अत्यन्त प्राणवान स्वर शांत हो गया था, शायरी की दुनिया की एक बहुत ही रौशन शमा बुझ गयी थी।

इन बातों का ताल्लुक उस बेमिसाल हस्ती से है जिसे दुनिया फिराक गोरखपुरी के नाम से जानती है। उनके निधन की पहली सालगिरह पर आज कुछ लिखते हुए बड़ी मुश्किल से अपने जज़्बात पर काबू पा रहा हूं। यादों की झड़ी सी लग गयी है। कई तस्वीरें ज़ेहन पर उभरती हैं और उनमें एक होड़ सी लगने लगती है।

अपने अध्ययन कक्ष में रखी हुई उस प्रतिभा-पुरुष की युवावस्था की तस्वीर की ओर नज़र डालता हूं—आला दरजे के सूट और टाई से लैस इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के अंग्रेजी प्राध्यापक। फिर अलबम उठाता हूं—यह प्रौढ़ावस्था में लिया गया चित्र है—फर की टोपी, लकदक सफेद कीमती शेरवानी और चूड़ीदार पाजामा पहने हुए। आंखों मे शायराना चमक, लब जैसे कुछ बोल उठने को फड़क रहे हों। और फिर बहुत बाद की, जर्जर बुढ़ापे की, जीवन के अन्तिम दिनों की तस्वीर पर दृष्टि घिर-बंध कर रह जाती है। बार-बार तस्वीर को निहारता हूं– वही विद्वता का तेज़, मनन और चिन्तन को पुष्ट करता हुआ उन्नत ललाट, अनुभव की गहराइयों को नापती हुई वही आंखें, संवेदनशील भावनाओं से समृद्ध स्वाभाविक मुस्कान बिखेरता वही चेहरा। फर्क बस इतना है कि अब व्यक्तित्व में अत्यधिक

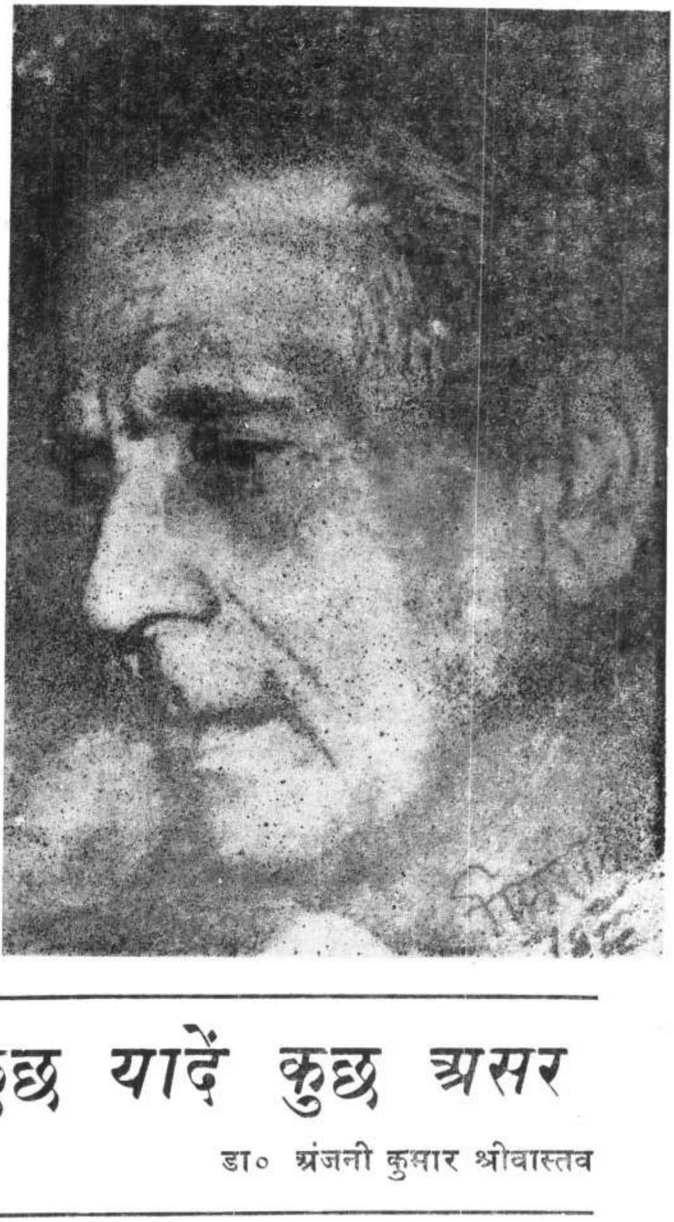

परिपक्वता दीख पड़ती है—"अकसीर हो चुका हूं एक आंच की कसर है।" शेक्सपियर के शब्द याद आ जाते हैं —"राइपनेस इज़ ऑल" (परिपक्वता ही सब कुछ है)। तस्वीर को बार-बार देखता हूं, आंखें भर आती हैं और स्मृतियों के अथाह जंगल में खो जाता हूं।

मैं अपनी गणना उन भाग्यशाली व्यक्तियों में करता हूं जिनका वर्षों से इस महान विभूति के साथ अत्यन्त निकट का सम्पर्क रहा है। उनसे पहले-पहल कब और कैसे मिला इस वाकिये को कोई 15-16 साल हो गये हैं। मैं उन दिनों इलाहाबाद विश्वविद्यालयमें छात्र था। फिराक साहब अध्यापन कार्य से अवकाश ग्रहण कर चुके थे मगर वे नित्य ही अंग्रेजी विभाग के स्टाफ-रूम में आते, वहां उनके कहकहे और ठहाके गूंजते। हम लोग अध्यापक-कक्ष के अंदर झांकने की कोशिश करते। सुन रखा था बहुत बड़े जीनियस हैं। हिम्मत नहीं होती सामने जा कर बात करने की।

अब अंग्रेजी विभाग में मैं एक अच्छे विद्यार्थी और पत्र-पत्रिकाओं में छपने वाले एक नये हस्ताक्षर के रूप में पहचाना जाने लगा था। उन्हीं दिनों की बात है अंग्रेजी परिषद् के तत्वावधान में महाकवि वर्ड्सवर्थ के रचना-संसार पर फ़िराक़ साहब के व्याख्यान का आयोजन हुआ था। उनके प्रभावशाली भाषण के अनन्तर अनेक प्राध्यापकों, छात्रों और साहित्यिक बन्धुओं ने कुछ और पा लेने की गरज़ से उनसे कई सवाल पूछे और खुले साफ शब्दों में उनके दो टूक जवाब ने सबका मन मोह लिया था। मैंने भी उनके सामने कुछ प्रश्न रखे थे। बात आयी गयी हो गयी।

करीब हफ़्ते भर बाद वहां अंग्रेजी विभाग के बरामदे में

फ़िराक साहब का और मेरा आमना-सामना होता है, मुझे पहचान लेते हैं, कहते हैं—"····लिट्रेचर से लगाव है, बहुत अच्छी बात है: कॉम्पटन रिकेट की 'हिस्टरी ऑव इंग्लिश लिट्रेचर' को ओढ़ना-बिछौना बना लो····वक्त निकाल कर कभी-कभी घण्टे-दो घण्टे के लिए मेरे पास आ जाया करो।"

और यहीं से यह सिलसिला शुरू हो जाता है। मैं उनके घर आने जाने लगता हूं। उनकी बातें सुनने में बहुत अच्छी लगती थीं। दिमागी स्तर पर टॉनिक का काम करती थीं और दिल को लुभाने वाली हुआ करती थीं। अब तो उनके पास घण्टों बैठने का नशा सा सवार हो गया। मैंने महसूस किया कि उनकी व्यावहारिक और मामूली बातें भी एक हद तक गैरमामूली साहित्य शिक्षण की सामग्री प्रस्तुत करतीं। तबीयत बाग़-बाग़ हो जाया करती। कभी कहते—"ग्रेट लिट्रेचर इज़ ब्रिलियेण्ट इल्लिट्रेसी (महान साहित्य चमत्कारी अज्ञानता है)। एक बार उन्होंने कहा—"ग्रेटनेस् शुड बि ऐज़ इमपर्सनल ऐज ए फोर्स ऑव नेचर" (महानता प्राकृतिक शक्तियों की तरह निवय्यक्तिक होनी चाहिए)। शेक्सपियर पर बातें करते-करते तुलसीदास तक पहुंच जाते। इस प्रसंग में उनके शब्द मुझे अच्छी तरह याद हैं—"शेक्सपियर इज़ लाइफ-लाइक, तुलसीदास इज़ बोथ लाइफ-लाइक ऐण्ड लाइफ गिविंग" (अपने साहित्य में शेक्सपियर जीवन के अनुरूप हैं पर तुलसीदास जीवन के अनुरूप भी हैं और जीवन-दायी भी)। आगे चल कर मुझे उन्होंने बताया कि किस प्रकार और किन-किन माध्यमों--जैसे मानवीय भावनाएं, मानवीय क्रिया-कलाप आदि से कविता का जन्म हुआ। चिड़ियों का चहचहाना, दरिया का बहना, दरख्तों का झूमना, घाटियों की प्रतिध्वनि, एकान्त का सन्देश, यही सब वे चीजें हैं जिनसे आदमी को कविता की प्राथमिक शिक्षा मिली। साहित्य के प्रिजर्वेटिव फोर्स पर रोशनी डालते हुए उन्होंने मुझे बताया था कि प्रथम विश्व-युद्ध के दौरान जब अंग्रेज नौजवान फ्रांस में कट रहे थे तो प्रोफसर मिडिल्टन मरे अग्रेज लड़कों को क्लास में ग्रीक कविता पढ़ा रहे थे। कुछ मनचलों ने उनसे पूछा—"हमारे जवान युद्ध में इतनी बड़ी तादाद में कट रहे हैं, आप क्या कर रहे हैं?" प्रोफेसर मरे का जवाब था कि "जिस सभ्यता और संस्कृति को बचाने के लिए हमारे युवक अपनी जान की बाजी लगा रहे हैं उसे मैंने अपने दरजे में जीवित कर रखा है।"

फ़िराक साहब के बैंक रोड (इलाहाबाद) आवास पर रोज सवेरे-शाम मुलाकातियों का तांता लगा रहता था जिनमें ज्यादातर प्राध्यापक, बुद्धिजीवी, पत्रकार, छात्र एवं उच्च अधिकारी आदि हुआ करते थे। सब लोग उनके पास खामोश बैठे अधिकतर उनकी ही बातें सुनने को आतुर रहा करते थे। साहित्य हो या दर्शन, राजनीति हो या ज्ञान का अन्य कोई क्षेत्र, सभी विषयों पर बड़ी सूझ-बूझ, के साथ वे अपने विचार प्रकट किया करते थे। उनके चेहरे के बदलते भाव, सिगरेट की कशों और खत्म होते ही दूसरी सिगरेट जला लेना, बैठे-बैठे यकायक उठ कर खड़े हो जाना, टहल-टहल कर बातें करना, अक्सर लोगों की आधी बात सुन कर ही पूरी बात का सही एहसास पा लेना—जाहिर है कि विचार और चिन्तन का दौर उनके दिमाग को कितना व्यस्त रखता था। शब्द जब गहन मंथन के बाद निकलते हैं तो कितने ताज़े, समर्थ और आत्मीय हो उठते हैं इसका सबूत मिलता था फ़िराक साहब की बातें सुन कर। हां, यहां इस बात का भी जिक्र जरूरी है कि वे अत्यन्त "मूडी" व्यक्ति थे। अगर अच्छे "मूड" में हुए तो अपने काव्य लोक में, अदबी खयालात की अपनी दुनिया में इस तरह असीम आनन्द की सैर वह करा देते थे कि उसका नशा हफ्तों बना रहता था और यदि खराब मूड में हुए तो गालियां सुनने को मिलती थीं चाहे वह विश्वविद्यालय के कुलपति हों या हिन्दी के आधुनिक कवि। लेकिन ये गालियां हर बार जिन नये रूपकों और प्रतीकों में ढल कर निकलती थीं उनसे गाली देने की उनकी प्रतिभा पर लोगों को उतना ही आश्चर्य होता था जितना उनकी प्रतिभा पर। आधुनिक हिन्दी कवियों की भाषा उनके गले से नीचे नहीं उतरती थी। कवि या लेखक के रूप की सुन्दरता वे उसके द्वारा प्रयुक्त भाषा में देखते थे और कुरूपता पर अपने पूरे अस्तित्व से हमला करते थे। कहा करते थे कि अगर भाषा में सादगी का रंग, बोल-चाल का तेवर और नागरिकता के तत्व देखने हों तो उर्दू की रचनाओं को देखिये।

साहित्य और जीवन के संबंध में फिराक साहब की अपनी मान्यताएं थीं। विश्व साहित्य की गहरी जानकारी हासिल थी उन्हें। साहित्य उनके लिए बहुत बड़ा अर्थ रखता था। दिल की गहराइयों से चाहा था उन्होंने साहित्य को। साहित्य और जीवन में वे पूरे आशावादी थे। उनकी धारणा थी कि जो साहित्य जीवन में स्फूर्ति का मंत्र न फूंके, आशा की ज्योति न जगाये वह साहित्य मुर्दा है। काव्य-तत्व की सूक्ष्मतम वृत्तियों में रमे रहना उनका स्वभाव था।

फ़िराक साहब ने मेरे ऊपर कई गहरे प्रभाव छोड़े हैं। उनके विचार, उनके चिन्तन, उनकी रचनाओं और उपलब्धियों से हासिल किये गये कुछ असर कभी न उतरने वाले रंग की तरह हैं। यह उनसे सम्पर्क के कारण ही था कि साहित्य सिर्फ अध्ययन का ही एक विषय नहीं बल्कि जिन्दगी और उसके शऊर का एक ढंग बन गया। अपनी बौद्धिक महानता को इस सरलता और शालीनता के साथ खींचते रहने के उनके गुण से कौन प्रभावित नहीं होगा? प्रचारवाद और विज्ञापनवाद से हमेशा दूर रह कर उन्होंने विद्या-साधना और काव्य-साधना की ओर अपने अगाध-ज्ञान और लोक-विमोहिनी कला से समाज और राष्ट्र को जीवनी शक्ति प्रदान की।

सच है:—

"नयी जमीन, नया आसमां, नयी दुनिया
नयी है महफ़िलें-साकी नये हैं जामों-सुबू
ये सब सही मगर ऐ जुरआ-नोशे-बाद-ए-हिन्दू-
हुंसा-रुला के हमें दे गया बहुत कुछ तू।"

पो० 10/1 न्यू कालोनी रविन्द्रापुरी (लेन न० 12) वाराणसी-5

Words 3500 Rs. 115|

प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की स्मृति में

मुगल सम्राट बहादुरशाह जफ़र तथा उनकी शायरी

● उषा उर्वेश

बहादुरशाह जफ़र

बहादुरशाह जफर मुगल-साम्राज्य के अंतिम बादशाह थे। उनका जीवन दुःखों की करूण कहानी थी। वह जीवन-पर्यन्त कठिन परिस्थितियों के झंझावात से जूझते रहे। जीवन के कठिन सघर्ष ने उनके हृदय पर बहुत प्रभाव डाला। उनकी शायरी उनके जीवन का प्रतिबिंब है। महाकवि शैली के अनुसार हमारे सबसे सुंदर गीत वही है जो अंतर्मन की सबसे दुःखद अनुभूतियों की अभिव्यक्ति कहते हैं। कविवर सुमित्रानंदन पंत के शब्दों में—

"वियोगी होगा पहला कवि !
आह ! से उपजा होगा गान !
उमड़ कर आंखों से चुपचाप,
वही होगी कविता अनजान !

श्री हरिवंश राय बच्चन ने लिखा है— मैं फूट पड़ा तुम कहते हो छंद बनाना। जफ़र की आंतरिक वेदना के स्वर उनकी शायरी में मुखर हो उठे हैं।

बहादुरशाह 'ज़फ़र' का जन्म 24 अक्तूबर सन् 1775 को दिल्ली के लालकिले में मुगल साम्राज्य के पराभाव काल में हुआ था। मुगल-साम्राज्य का वैभव तथा उन्मुक्त हास विलास अतीत के गर्भ में खो गया था और अब गत गौरव की स्मृति-मात्र ही शेष रह गयी थी। नादिरशाह तथा अहमदशाह अब्दाली के क्रूर आक्रमणो ने मुगल-साम्राज्य की जड़ें हिला दी थी। ऐसी विषम परिस्थितियों में शाहआलम के दूसरे बेटे अकबरशाह सानी के यहां, उनकी एक हिन्दू बेगम लालबाई की कोख से बहादुरशाह जफ़र का जन्म हुआ।

औरंगजेब के पश्चात् कोई भी मुगल बादशाह पराक्रमी एवं योग्य शासक नहीं हुआ। बहादुरशाह ज़फ़र ने शैशव-काल से ही मुगल-साम्राज्य की दीवारों को शनैः-शनैः गिरते हुए देखा था। उस समय तक मुगल साम्राज्य की शक्ति क्षीण हो गयी थी। ज़फ़र के बाल्यकाल में गुलामकादिर ने दिल्ली पर आक्रमण कर दिया। बूढ़े बादशाह शाहआलम को कैद कर लिया गया तथा उन्हें तरह-तरह की यातनायें दी गयीं। बादशाह के समस्त परिवार पर इस दर्दनाक घटना का प्रभाव पड़ा। आक्रमणकारियों ने बूढ़े बादशाह की छाती पर चढ़ कर खंजर से उनकी आंखें निकाल ली। बेगमों को निर्दयता से पीटा गया। उस समय—"कोई आंख न थी जो आंसुओं से पुर नम न थी, कोई दिल न था जो गम से खाली था।" ज़फर जब भी इस घटना को याद करते, उनके मुख से अनायास निकल जाता था—

"करूं इस सितम का मैं क्या बयां,
मेरा गम से सीना फ़िगार है।"

धीरे-धीरे मराठों की शक्ति क्षीण होती गई तथा अंग्रेजों का प्रभाव बढ़ता गया। मराठों की पराजय के बाद मुगल बादशाह, अंग्रेजों के आधीन नाममात्र का शासक रह गया था। 30 दिसम्बर सन 1837 को बादशाह जफ़र ने अपने पिता अकबरशाह की मृत्यु के पश्चात् बादशाह तथा गाजी की पदवी ग्रहण की। यथार्थ में वह केवल अंग्रेजों के हाथ की कठपुतली-मात्र थे। पराक्रमी मुगल बादशाहों के वंशज बहादुरशाह जफर की राज्य-सीमा केवल दिल्ली के लालकिले तक सीमित रह गयी थी। बादशाह को अंग्रेजों से वृत्ति मिलती थी जिससे शाही परिवार, कुटुम्बियों, आश्रितों और नौकर-चाकरों का खर्च चलता था। आमदनी घट गयी थी और खर्च अधिक था। बादशाह जफ़र इकरारनामें की शर्तों के अनुसार अपने खर्च की राशि बढ़ाना चाहते थे। अंग्रेज चाहते थे कि इस आभार के बदले में वह बादशाह की पदवी के छोड़ दें, तथा लालकिले के स्थान पर कहीं और रहने लगें। यह बात सम्राट बहादुरशाह जफ़र की प्रतिष्ठा के प्रतिकूल पड़ती थी। अंग्रेज पग-पग पर बादशाह को अपमानित करने लगे। पहले ईद, बकरीद, नौरोज तथा बादसाह के जन्म दिन पर अंग्रेज अधिकारी स्वयं दरबार में उपस्थित होकर बादशाह को नजर भेंट करते थे। वे दरबार में नंगे पैर उपस्थित होते थे। बादको आदाब बजाते तथा उनके

स्वास्थ्य के विषय में पूछताछ करते थे। अंग्रेज गवर्नर-जनरल की मुद्राओं पर—दिल्ली के बादशाह का फिदवी-ए-खास (खास नौकर) लिखा रहता था। बादशाह बहादुरशाह ज़फ़र के शाही तख्त पर बैठने पर उन्हें अंग्रेजों ने नजर भेंट की थी, पर धीरे-धीरे यह रिवाज बंद कर दिया गया। इस प्रकार से बादशाह की प्रतिष्ठा को बहुत धक्का लगा तथा वह अपने को अपमानित अनुभव करने लगे।

मुगल सम्राट बहादुरशाह बंदी के रूप में

बादशाह के बड़े पुत्र का नाम मिर्जा दाराबख्त था। नियमानुसार बहादुरशाह ज़फर के पश्चात उसे ही गद्दी मिलनी चाहिए थी। सन 1839 में वलीअहद (युवराज) की मृत्यु हो गई। बादशाह के एक और पुत्र की केवल बारह वर्ष की आयु में मृत्यु हो गई थी। बेटों की अकाल मृत्यु से बादशाह का दिल टूट गया। उनके अन्तर की असहाय वेदना, इन पंक्तियों में स्पष्ट झांकी मिलती है—

गुल कुछ तो इस चमन की हवा खाके झड़ पड़े
वो क्या करें कि गुचा ही कुम्हला के झड़ पड़े।"

बहादुरशाह ज़फ़र के दुःखपूर्ण जीवन की संगिनी मलिका ज़ीनत महल थीं। ज़ीनत महल अपने पुत्र जवाबख्त को बादशाह बनवाना चाहती थी। अंग्रेज मलिका जीनत महल तथा जवांबख्त दानों के ही विरुद्ध थे। उन्होंने बादशाह की इच्छा के विरुद्ध मिर्जा कोयाश को वलीअहद घोषित कर दिया। मिर्ज़ा कोयाश ने अंग्रेजों से गुप्त संधि कर ली थी। वह बादशाह की पदवी तथा लालकिला दोनों ही छोड़ने को तैयार थे। इस बात से बादशाह के मन को गहरी चोट लगी। उनकी क्रोधाग्नि भड़क उठी। उनकी वेदना इन पंक्तियों में साकार हो उठी—

"ऐ जफर अब है तुझी तक इन्तज़ामे सल्तनत
बाद तेरे न वली-अहद न नामे सल्तनत।"

सम्राट बहादुरशाह ज़फ़र एक टिमटिमाते हुए दीपक की भांति थे जिसकी लौ क्षण-प्रतिक्षण समाप्त होती जा रही थी। उन्होंने उस टिमटिम करती वर्तिका को आलोकमय बनाये रखने की प्राण-प्रण से चेष्टा की, परन्तु असफल रहे। 10 मई सन 1857 को मेरठ में क्रांति का आरंभ हुआ। 11 मई को क्रांतिकारी दिल्ली आ पहुंचे। सम्राट से नेतृत्व संभालने की अपील की। बादशाह ने उनसे पूछा मेरे पास कोई खजाना नहीं है। मैं आप लोगों को तनख्वाह कहां से दूंगा। क्रांतिकारियों ने उत्तर दिया—"हम लोग हिन्दुस्तान भर के अंग्रेजों के खजाने ला-ला कर आपके कदमों में डाल देंगे।" बूढ़े बादशाह ने क्रांतिकारियों का नेतृत्व स्वीकार कर लिया तथा सारा किला उनकी जय-ध्वनि से गूंज उठा।

16 मई 1857 को दिल्ली पर क्रांतिकारियों का पूर्ण रूप से अधिकार हो गया। बहादुरशाह फिर से दिल्ली के आजाद बादशाह कहे जाने लगे। देश भर के क्रांतिकारियों ने बहादुरशाह ज़फ़र को अपना बादशाह और क्रांति का नेता मान लिया। उनके नाम पर ही अंग्रेजों के विरुद्ध स्वतंत्रता का युद्ध लड़ने का आह्वान किया गया। ज़फ़र क्रांतिकारियों की आशा के केन्द्र थे। दिल्ली के स्वाधीन होते ही बादशाह की ओर से एक ऐलान सारे भारत में जारी किया गया —"ए हिन्दुस्तान के फरज़न्दो। अगर हम इरादा कर लें तो बात की बात में दुश्मन का खात्मा कर सकते है, हम दुश्मन का नाश कर डालेंगे और अपने धर्म और अपने देश को, जो हमें जान से भी ज्यादा प्यारा है, खतरे से बचा लेंगे।" ज़फ़र ने अपने कर्तव्य को निभाने का पुरा-पुरा प्रयास किया। उन्होंने बख्तखां को अपना सेनापति बनाया। कुछ लोगों को शहर में व्यवस्था रखने के लिए नियुक्त किया। उन्होंने सैनिकों को ठीक समय वेतन देने का प्रयास किया। सारा देश उनके हरे झंडे के नीचे अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध लड़ रहा था। दुर्भाग्यवश घटनाओं ने दूसरा मोड़ लिया। क्रांतिकारियों में अव्यवस्था बढ़ती गयी। स्थान-स्थान पर अंग्रेज सेनाओं ने क्रांतिकारियों को पराजित कर दिया। दिल्ली पर पुनः अंग्रेजों का अधिकार हो गया। बादशाह ने हुमायुं के मकबरे में शरण ली। अंत में मेजर हडसन ने बादशाह का बंदी बना लिया। कहा जाता है कि अंग्रेजों ने तीन शहज़ादों के सिर काट कर बादशाह को भेंट किये। सिरों को पेश करते हुए हडसन ने बहादुरशाह से कहा—"कम्पनी की ओर से यह आपकी नजर है, जो बरसों से बन्द थी।" बादशाह ने अपने बेटों का कटा सिर देखा और आश्चर्यजनक धैर्य के साथ कहा— "अलहम्दोलिल्लाह! तैमूर की औलाद ऐसे ही सुर्खरू हो कर बाप के सामने आया करती

लेखिका उषा उर्बेश

थी।" किवंदती के अनुसार हडसन ने उसी समय शहजादों का गरम-गरम चुल्लू भर रक्त पीया। परंतु उस समय के अंग्रेज इतिहासकारों ने इस घटना का उल्लेख नहीं किया है। बहादुरशाह जफर पर मुकदमा चलाया गया। उन्हें देश से निर्वासित कर दिया गया, तथा आजीवन कारावास की सजा देकर रंगून भेज दिया गया। दिल्ली छोड़ते हुए सम्राट बहादुरशाह ने निम्नलिखित पक्तियां कही थी—

"जलाया यार ने ऐसा कि हम वतन से चले
बतौर शम्मअ के रोते इस अंजुमन से चले
न बागबां ने इजाजत दी सैर करने की
खुशी से आए थे, रोते हुए चमन से चले।"

साहित्यकार की रचना आत्माभिव्यक्ति ही नहीं, बल्कि उसकी आत्मकथा भी होती है। बादशाह बहादुरशाह जफर के जीवन का कठिन संघर्ष, दुःख और पराजय उनकी शायरी में मुखरित हो उठा है। करुणा रस उनकी शायरी का प्रमुख स्वर है। उनकी कुछ हृदयस्पर्शी पंक्तियां है—

"लगता नही है दिल मेरा उजड़े दयार में
किसकी बनो है आलमें-नापाएदार में
कह दो इन हसरतों से कहीं और जा बसें
इतनी जगह कहां है दिले-दागदार में।"

मेरा मन इस उजड़े हुए मुल्क में अब नहीं लगता। इस नश्वर संसार में किसकी बनी रही है। ओ मेरे आशा-अरमान तुम कोई और जगह खोज लो। इस घायल हृदय में अब तुम्हारे लिए कहां जगह रह गयी है।

न किसी की आंख का नूर हूं, न किसी के दिल का करार हूं
जो किसी के काम न आ सके मैं वो एक मुश्ते-गुबार[1] हूं

न मैं किसी की आंखो की ज्योति हूं और न ही किसी के हृदय को सांत्वना देने में समर्थ हूं। मैं केवल मुट्ठी भर धूल हूं जो किसी के काम नही आ सकती।

निम्नलिखित पंक्तियों में हृदय की घनीभूत पीड़ा उभर आयी है—

"पसेमर्ग[2] मेरे मजार पर
जो दिया किसी ने जला दिया
तो उसे आहे दामने-याद[3] ने
सरे शाम ही से बुझा दिया

(मौत के बाद यदि किसी ने मेरी कब्र पर दिया जला भी दिया तो उसे हवा के झोंके ने संध्या होते ही बुझा डाला) एक और स्थान पर वह लिखते हैं—

"जो मुझे लेता है फिर वो फेर देता है मुझे
मैं अजब इक जिन्से-नाकारा खरीदारों[4] में हूं।"

(जो भी मुझे लेता है वही लौटा देता है। मैं एक व्यर्थ का व्यक्ति हूं जिसे कोई नहीं चाहता।)

बहादुरशाह जफर का जीवन के प्रति दृष्टिकोण ही निराशावादी हो गया था। उनके कलाम में यह स्पष्ट रूप से झलक उठता है—

"दे रोज साकिया मुझे दो चार जामें मैं
वो चार रोज है मौसम बहार का
यासो-गमो अलम,[5] तपिशो-दागों[6] रंजो दर्द
भाता है साथ मुझको इन्हीं तीन-चार का।"

(ओ साकी)! मुझे प्रतिदिन दो चार प्याले शराब के दो। बाहर का मौसम कितना क्षणभंगुर है मेरे मन में निराशा घिर आयी है। मुझे केवल दुःख-दर्द और वियोग का साथ ही अच्छा लगता है। पीड़ा की कैसी चरम-सीमा है कि हर्ष और उल्लास जीवन से निःशेष हो गये। निम्नलिखित पंक्तियों में उन्होंने अपने भावों को बहुत ही सुंदरता से प्रकट किया है—

"किया हजार शगुफ्ता[7] बहार ने लेकिन
खिजां के डर से कभी बाफराग[8] गुल न हुआ।"

(बहार ने कितनी ही बार फूल को खिलाने का प्रयत्न किया परन्तु पतझड़ के डर से वह कभी खिल नहीं सका)

जफर के कलाम में आध्यात्मिकता, नैतिकता और उदात्त भावनाओं का भी अभाव नहीं है। संसार की मृगमरीचिका से मनुष्य को सचेत करते हुए उन्होंने लिखा है—
मनुष्य को अंतर-मंथन की आवश्यकता है। औरों की बुराई—भलाई देखने से क्या लाभ है? बहादुरशाह जफर का विश्वास था कि परमात्मा को जंगल में ढूंढने की जरूरत नहीं है। हमें ईश्वर को इसी जगत में हंसते-खेलते हुए पाना होगा—

"जा बैठा है सहरा में जबसे शहर से जाहिद
क्या सूझेगा जंगल में जो बस्ती में न सूझा।"

बहादुरशाह जफर के कलाम मे श्रृंगार—पक्ष का महत्वपूर्ण स्थान नहीं है परंतु फिर भी श्रृंगार जीवन का अभिन्न अंग है, अतएव उस पर भी उनकी लेखनी उठे बिना नहीं रह सकती थी। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है कि प्रिय की छवि देखकर आशिक की क्या हालत हो जाती है—

"आ-जाती है जिस वक्त तेरी ध्यान में सूरत
हो जावे है यां और भी इक आन में सूरत
जुल्फों से तुम्हारी हूं परेशान जियादा
देखो मेरी इस हाले-परेशान में सूरत।"

1. मुट्ठी भर धूल, 2. मौत के बाद, 3. हवा का झोंका, 4. झूठे खरीदार का सौदा, 5. निराश्य दुःख, 6. वियोग दुःख दर्द, 7. खिला हुआ, 8.. विकसित

जफ़र की शायरी में कहीं-कहीं पर रंगीनी और चुहल भी है—

"दामन अपना तू उठा चलता था इस नाज के साथ,
घेरा दामन का मुझे घेर के ले आता था
आंख चाहत की "ज़फ़र" कोई भला छिपती है
उससे शरमाते थे हम, हमसे वो शरमाता था।"

बहादुरशाह जफ़र की शायरी में भाव-प्रवणता है तथा संगीत-माधुर्य भी है। उनकी शायरी सरल और हृदय-स्पर्शी है, उनकी महफिलों में मिर्जा गालिब तथा जौक जैसे शायर आया करते थे। जिस प्रकार मृत्यु और जीवन विश्व के शाश्वत नियम है उसी प्रकार पीड़ा भी मानव की चिर-सहचरी है। जफ़र के कलाम में संतप्त मानव को अपने हृदय की वेदना और निराशा की झांकी दिखायी देती है। यदि हम कविता की परिभाषा यह मान लें कि—

"कविता वही है जो हृदय में तीर सी आकर लगे
सुन्दरी वही है श्वेत-वस्त्रा हो तथापि सुंदर लगे।"

तो जफ़र का कलाम भी कम भावपूर्ण और सुन्दर नहीं है। उनमें महान शायरों जैसी दार्शनिक गूढ़ता न भी हो तो भी वह अपनी सरल भावाभिव्यक्ति में सफल हैं।

जफ़र जहां उर्दू के अच्छे शायर थे वहां ब्रजभाषा और हिन्दी में भी उन्होंने अपनी कवित्व प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया था। रंगून में रहते हुए जफ़र ने मातृभूमि का स्मरण इस प्रकार किया था।

कौन नगर से आए हम,
और कौन नगर में बासे हैं।
जाएंगे हम कौन नगर को,
होते मन में हिरासे हैं॥
क्या-क्या पहलू देखे हमने,
पहले इस फुलवारी में।
अब जो फले इसमें फल हैं,
कुछ और ही इसमें बासे हैं॥

इन पंक्तियों की भाषा उर्दू न होकर खड़ी बोली हिन्दी बनी है। ब्रजभाषा में भी जफ़र ने अच्छी रचनाएं की थीं। एक उदाहरण इस प्रकार है:

जिन गलियन में पहले देखीं,
लोगन की रंगरंलियां थी।
फिर देखा तो उन लोगन बिन,
सूनी पड़ी वे गलियां थीं॥
राज बहारें लूटते थे वे,
जो-जाकर जिन बागन में।
"शौक" रंग अब जो देखा वां,
नहीं फूल व कलियां थीं॥

जफ़र ब्रजभाषा तथा हिंदी की रचनाएं 'शौक' उपनाम से किया करते थे।

बंदी बनाने के पश्चात बादशाह बहादुरशाह जफ़र के साथ बहुत दुर्व्यवहार किया गया। यह सत्य है कि उनके हथकड़ी-बेड़ी नहीं लगायी गयी थीं परंतु दिल्ली आने वाला प्रत्येक अंग्रेज उन्हें अपनी इच्छानुसार किसी भी समय देख सकता था और उन पर व्यंग कर सकता था तथा उनकी व्यक्तिगत दिनचर्या में खलल डाल सकता था। ग्रिफिथ ने लिखा है कि बंदी बनाने के बाईस दिन बाद उन्होंने बादशाह को देखा। वह बरामदे में साधारण चारपाई पर बैठे हुए थे। उनके व्यक्तित्व में कुछ भी असाधारण नहीं था। वह दिन-रात चुपचाप बैठे रहते थे और फर्श की ओर ताकते रहते थे। ऐसा प्रतीत होता था कि उन्हें अपने परिवेश का ज्ञान ही नहीं है। वह अस्सी-नब्बे वर्ष के टूटे-बिखरे हुए व्यक्ति लगते थे। जिस समय मिसेज कूपलैंड ने उन्हें देखा उस समय शक्तिशाली मुगल साम्राज्य के वंशज बहादुरशाह जफ़र ने गंदे सूती कपड़े पहन रक्खे थे और एक गंदी सी रजाई अपने ऊपर डाल रक्खी थी। जिस बादशाह के सामने किसी व्यक्ति का बैठना भी उसका अपमान करना था। वही बादशाह सबको झुक-झुक कर सलाम कर रहा था और कह रहा था—"आपको मिलकर बड़ा खुशी" कैसी दर्दनाक स्थिति थी।

शहजादा वख्तखां उस समय बीमार थे परंतु अंग्रेज अतिथि के आने पर उसे खड़े हो कर उनका सम्मान करना पड़ता था। इस कठिन परिस्थिति में बादशाह के पास कागज-कलम भी नहीं थे परंतु वह जली हुयी लकड़ी से अपने कमरे के चारों ओर की दिवारों पर शायरी लिखते रहते थे और अपने मन की व्यथा को उसमें ऊंडेल देते थे।

रंगून में भी उनका जीवन भूख-प्यास और निर्धनता की स्थिति में बीता। इन हृदय-विदारक परिस्थितियों में शेरो-शायरी ही उनका एक मात्र शौक था। इन दिनों उन्होंने बहुत सी गजलें लिखीं। अपने देश से दूर रंगून के कैदखाने में 7 नवम्बर सन् 1862 को उनकी मृत्यु हुयी और व्यथा पूर्ण कहानी का अंत हो गया उन्हीं के मार्मिक शब्दों में—

उम्रेदराज मांग के लाए थे चार दिन
दो आरजू में कट गए दो इन्तजार में
है कितना बदनसीब जफर दफन के लिए
दो गज जमीं भी मिल न सकी कूए-यार में...

5-बी, हौजखास, नई दिल्ली

जफ़र की ब्रजभाषा की रचनाओं के उद्धरण श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' द्वारा संपादित 'दिवंगत हिन्दी कवि: खण्ड II' से लिये गये हैं।

"आधी-आधी रात को पहुरुआ बोला करता है। ओ प्रियतम, अब तुम्हारे पास नहीं आऊंगी। बैंगन तोड़ने मैं बैंगन-बाड़ी में गयी। वहां छाती में कांटा गड़ गया। कौन मेरी छाती का कांटा निकालेगा, मेरी पीड़ा कौन हरेगा? देवर मेरी छाती का कांटा निकालेगा और मेरा प्रियतम मेरी छाती की पीड़ा हरेगा।" ये भावनाएं इन पंक्तियों में अभिव्यक्त हुई हैं—

आधी-आधी रतिया हो रामा
बोलइ छइ पहुरुआ
अब ने जायब तोंहि पास
बंगन तोड़े गेलों ओहि बंगन बरिया
गड़ि गेल छतिया में कांट हो रामा
के मोरा छतिया क कंटवा निकालत
के मोरा दर्द हरि लेत
देओरा मोरा छतिया क कंटवा निकालत
सइयां दरद हरि लेत हो रामा...

उक्त पंक्तियां मिथिला क्षेत्र में गायी जानेवाली चैती की हैं, जिसके गाने की एक विशेष शैली होती है।

अमुआ मोजर गेल
फरि गेल टिकोरवा
डारे-पाते भेल मतवलवा हो रामा

अर्थात, जब चैत बीत जाएगा तो मेरे प्रियतम क्या करने आएगें? आम में बौंर लग गये, बौर में टिकोरे निकल आये और टहनी-टहनी मतवाली होकर झूलने लगी। मगही क्षेत्र की नायिका की कमोवेश यही स्थिति है—

चैत है सखी सब का फूलइ
फुलइ गुलाब के फूल हैं
सखी सब फूलइ रामा पियवा के संग
हमरों फुलवा मलीन हे

यानी, चैत में फूलों की भीनी मुस्कान ने मन में उदासी भर दी लेकिन निर्मोही प्रियतम नहीं आया। सारी सखियों का सौभाग्य श्रृंगार, हास-परिहास देखकर वह तरसती रह गयी पर उसका प्रियतम परदेस से नहीं आया।

भोजपुरी क्षेत्र की नायिका का दुःख दूसरे प्रकार का है। उसे सास-ननद के आदेश से आधी रात में फूल चुनने जाना पड़ रहा है—

राम सासु हो ननदिया जनमवा के बैरी हो रामा
आधी राति कुसुम लोढ़न, मोहि भेजे हो रामा
रामा गोरी-गोरी बहियां पतरी अंगुरिया हो रामा
कुसुम लोढ़ले कांट गड़त हो रामा
रामा के मोरे कंटवा निकाले हो रामा
के मोरे हरेला दरदिया हो के मोरे रामा
रामा बाबा मोरे कंटवा निकाले हो रामा
सइयां मोरे हरेले दरदिया हो रामा

आधी रात में फूल चुनने के लिए जाती हुई स्त्री को सास और ननद जन्म की बैरिन प्रतीत होती हैं। उसकी बांहें गोरी-और उंगलियां पतली हैं। फूल चुनते समय उंगली में कांटा चुभ जाने पर वह सोचती है कि कौन उसका कांटा निकालेगा और कौन दर्द दूर करेगा। उसका विश्वास है कि पिता ही उसका कांटा निकाल सकता है और पति ही दर्द दूर कर सकता है।

चैती गीत दो प्रकार के होते हैं — घांटो चैती एवं साधारण चैती। घांटो चैती के गायक दो दलों में विभक्त होकर ढोल और झाल के साथ गाते हैं। पहला दल एक पंक्ति गाता है तो दूसरा दल उस के "टेक" पद को उच्च स्वर में बल देता जाता है। पहला दल जिस स्वर में गाता है, दूसरा दल उससे तेज स्वर

चैत हे सखी सब बन......

□ शम्भुनाथ मिश्र

वस्तुतः लोकगीतों में हृदय के वास्तविक उद्गार अभिव्यक्त होते हैं। इनका सृजन सामूहिक चेतना द्वारा स्वाभाविक रीति से होता है। जीवन की सहज क्रियाओं और व्यापारों में लीन जन-समुदाय के निश्छल, सरल और स्वाभाविक भाव गीतों के बोल बनकर उनके स्वर में तैरने लगते हैं। प्राकृतिक तत्वों के साहचर्य में सृजित होने के कारण प्रकृति की सम्पूर्ण मधुरता का समावेश उनमें होता है। इसके साथ ही, इनमें जीवन का सहज एवं नैसर्गिक आनंद अन्तर्हित रहता है।

चैता, चौतावर, घांटों अथवा चैती भी ऐसे ही लोकगीत हैं। जिनकी गीत-शैली की रसीली स्वर-लहरी श्रोताओं को डिगने नहीं देती। विशेष रूप से बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश के मैथिली, मगही एवं भोजपुरी भाषी क्षेत्रों में, फागुन-चैत के महीने में रूई के रोंए के समान ये गीत एक कंठ से दूसरे कंठ में तिरते रहते हैं। वसंत ऋतु की मस्ती और रंगील भावनाओं का अनोखा सौंदर्य इस गीत-शैली की अभिव्यक्ति में ताने-बाने का काम करते हैं।

एक ओर मिथिला की विरहिणी नायिका आर्त पुकार करती हुई कहती है:—

चैत बीति जयतइ हो रामा
तब पिया की करे अयतइ

में "टेक पद गाता है। जब गाने का अंत होने लगता है तब गाने वाले उच्चतम स्वर में गाने लगते हैं। साधारण चैती को या तो एक गायक ढोल और झाल के साथ गाता है या एक समूह बनाकर कई गायक एक साथ गाते हैं। झाल बनाकर समूह के द्वारा गायी जाने वाली चैती को "झलकुटिया" चैती भी कहते हैं। चैती की प्रत्येक पंक्ति के प्रारम्भ में "हो रामा" का प्रयोग होता भी है और कभी नहीं भी होता है। दूसरी पंक्ति के प्रथम दो पदों की पुनरावृत्ति उस पंक्ति के गायन की समाप्ति पर फिर की जाती है। ये दो पद "टेक" पद का काम देते हैं।

चैती के गीतों में प्रेमकी प्रधानता है और इनमें संयोग-श्रृंगार की सूक्ष्मगतिसूक्ष्म व्यक्तियों एवं अभिलाषाओं की अभिव्यक्ति मिलती है—

कुसुमी लोढ़न हम जायब हो रामा
राजा के बगिया।
मोर चुनरिया सैंया तोर पगड़िया
एकहि रंग रंगायब हो रामा।

नायिका की एक चिर अभिलाषा है कि वह और उसका प्रियतम एक रूप एक प्राण हो जाएं। इसलिए वह राजा के बाग में कुसुम के फूल तोड़ने जाएगी और इतने फूल चुनकर लाएगी कि उसकी चुनरी और प्रियतम की पगड़ी एकही रंग में रंग जाएगी।

कहीं चैत मास में अनुभूत आलस्य का वर्णन हुआ है (चैत की निंदिया जिया अलसाने हो रामा) तो कहीं राधा-कृष्ण एवं गोपियों के प्रेम संबंधों का विश्लेषण किया गया है, कहीं राम-जन्म की खुशी एवं राम-सीता का आदर्श दाम्पत्य प्रेम और राम तथा उनके भाइयों के बीच का नैसर्गिक स्नेह दर्शाया गया है (रामजी के भइले जनमवा हो रामा चैत के महीनवां, लुटावे रामा अन-धन सोनवा के लुटावेला गहनवा हो रामा चइत के महीनवां) तो कहीं स्वकीया और परकीया प्रेम के विविध रूप तथा राजनीतिक वर्णन) ए रामा भगत सिंह रहलन देस के रतनवां हो रामा, फांसी पर झुल्ले बवनवा हो रामा हंसी-हंसी) भी मिलते हैं।

चैत की धीमी-धीमी बयार और शिहिर-शिहिर हवा बह रही है। नींद की खुमारी से आंखों की पलकें रह-रह कर मुंद जाती हैं। प्रियतम विरह में छाती कड़क उठती है और सेज नहीं भाती —

बहत बयरिया हो रामा
धीमी-धीमी रे
झिर-झिर झिर-झिर पवन बहई
अंखिया झिप-झिप जाय
बिन पाहुन छतिया फटई
सेजिया मोहि न सोहाय
धीमी-धीमी रे

चैत का महिना बीता जा रहा है लेकिन कान्हा अबतक नहीं आए। न घर-आंगन अच्छा लगता है न भवन सुहाता है। गोपी ने शोक-श्रृंगार और आभूषण आदि छोड़ दिया है—

बीतल चैत महिनमां हो रामा
कान्हाँ नहिं आएल
घर आंगन मोरा नीक नहिं लागय
नीक नहिं लागय भवनमाँ हो रामा
कान्हाँ नहिं आएल
शौक सिंगार सब हम छोड़ल
छोड़ल सब रे गहनमां हो रामा
कान्हां नहिं आएल

बेला-चम्पा के फूल खिल उठे हैं। वन-उपवन में रंग-बिरंगे फूलों की बहार है। आम में बौर लग गये हैं, माली के बाग में महुआ फूल उठा है, लेकिन प्रियतम नहीं आए। कोयल कूक रही है। उसकी कूक को सुनकर विरहिणी की आंखों में नींद कहां? प्रियतम होते तो इस आधी रात के समय गले लगा लेते—

बेली फुलायल चम्पा फुलायल
सब वन फुलवा फुलायल हो रामा
अमवा फूलायल, महुआ फुलायल
मलिया क बगिया हो रामा
सइयां नहि आएल
बिरही कोयलिया शब्द सुनावय
बिरहिनी अंखियां ने निंदिया हो रामा
रहितथि पिअवा गरवा लगइतथि
आधि-आधि रतिया हो रामा
सइयां नहिं आएल...

मगही और मैथिली-भाषी क्षेत्र की अपेक्षा भोजपुरी-भाषी क्षेत्र में चैती का प्रसार अधिक है, जहां यह "चैती" के नाम से लोकप्रिय है। यहां लोग चैता के माध्यम से रामजन्म की खुशी को व्यक्त करते हैं। रात-रात भर चैता-गायन का कार्यक्रम चलता है जिसमें शुरूआत होती है सुमिरन से—

ए रामा सुरस्वती मातावा, जोरिले दुनों हथवा रामा
कंठे सुखा
कंठे सुख होखे सहइया ए रामा
कंठे सुखा...

इसके बाद रामचरित से संबंधित विविध प्रसंग गाये जाते हैं।—

रामजी के भइले जनमवां हो रामा
चैत नवमी दिनवां
राजा लुटाव रामा अन-धन सोनवां
रानी लुटावेली गहनवा हो रामा

या फिर,

एक रामा देसवा-विदेसवा के भूप लोग अइले हो रामा
केकरों से धनुष नाहीं टूटल ए रामा, ककेरों से ना

(शेष पृष्ठ 41 पर)

कहानी

क्षितिज कहां ?

--अभिमन्यु अनत

उसने अपना नाम कलूग बताया था। गांव में वह चर्चा का विषय तब से बना जब मरियम के बेटे ने उसे हनीफ के मेमने को टांगों के सहारे बकाईन के पेड़ में भुलाते देख लिया था। मेमने के दफनाये जाने के बाद मरियम ने कलूग से कहा था कि हनीफ तो सीधा साधा आदमी है पर अगर वह मेमना मरियम का अपना होता तो वह कलूग को छठी का दूध याद दिला जाती। कलूग हंसता हुआ और अंगुलियों के इशारे से गालियां देता हुआ भाग गया था।

जिस पहले दिन वह गांव में पहुंचा था हनीफ ने ही उसे पहले देखा था और नदी पार कराके उसे बस्ती में ले आया था। वह लोगों के प्रश्नों का कभी कोई जबाब देता ही नहीं था। हनीफ के बेटे को एक दिन अपना नाम बता दिया था। उसके बारे में लोगों को उतनी ही जानकारी थी।

गांव में बसे उसका पांचवा महीना था। बुधना के बेटे का सिर जब उसने गुल्ले से लहुलुहान कर दिया था तो बुधना ने गाली देते हुए कहा था कि यह पांच महीनों में पचपन करतूतें दिखा चुका। उसने हनीफ को भी कोसा था—अरे हनिफवा कहां से यह जजाल उठा लाया है।

लोगों ने उसकी उम्र का अंदाजा यहीं 12—13 के बीच लगाया था। लेकिन उसकी हरकतें तो अपने से छोटी उम्रो के लोगों से लेकर अपने से चार-पांच गुने ज्यादा उम्र के लोगों से भी होती रहती थी। भालू लगता है बुधना ने कहा था।

उसकी इन हरकतों से अधिक हैरान लोग उसकी कभी कभार की बातों से थे। उस दिन मंगला को पनघट से लौटते देखकर कई लोगों के बीच वह चिल्ला उठा था—मंगला के पेट में बच्चा है।

हगामा तो तब मचा जब उस घटना के चार महीने बाद सचमुच ही धाई ने भी मंगला के घर वालों के सामने यह कह दिया था—अरे ई त सबे के गोर से भारी थी। ऊ कलूगवा तो सच बोलले रहल।

गांव में दो तरह की फुसफुसाहटें शुरू हो गई थीं। एक ओर लोग मंगला और उसके परिवार को कोसने लगे थे...ये लोग बाहर लम्बे-चौड़े बोलते हैं पर घर में कंवारी लड़की सम्भाली नहीं जाती। दूसरी ओर के लोग यह सोच-सोच कर दंग थे कि कलूगावा को इस बात का पता कैसे चला। गांव के उसके हम-उम्र तो इस तरह की बातें जानते तक नहीं।

गांव के पुजारी लक्ष्मीनारायण पंडित ने उसे अपने पास बुलाकर पूछा था।

—अरे कलूग, तुम्हें कैसे मालूम हो गया था कि वह मंगला गर्भवती है।

कलूग प्रश्नों का उत्तर नहीं देता था, इसलिए हनुमान जी को चढ़ाया हुआ लड्डू चुपचाप खाता रह गया था।

—अच्छा ई तो बता कि मंगला के पेट में उ केकर बच्चा होवेला? तब तक कलूग दोनों केले भी चपेट चुका था। और वहां से भागने से पहले जोर से चिल्ला कर कहा था;—

—पंडित तुम हनुमान जी की पूजा करते समय आंखें मूंदे-मूंदे मन ही मन मंगला और रधिया की देहों से कपड़े उतारते रहते हो।

पुजारी को काटो तो खून नहीं। वह आवाक कलूग को नदी की ओर भागते देखता रह गया था। गनीमत थी कि उस समय शिवालय के प्रांगण में कोई भगत सुनने के लिए था नहीं। वह मन ही मन सोचता रह गया था कि यह कलूग किस घटोकच्छ का अवतार है। उसे उसके दिल की बात का पता कैसे चल गया। वह कलूग थोड़ा बड़ा होता और जीवन की बातें समझने योग्य होता तो पुजारी उसे अपने पास बिठा कर गाजे की चिलम थमाकर समझाता कि भला उसमें उसका क्या दोष था।

वह मंगला रधिया ही वैसी थीं । चोली और लहंगे में इस कदर कसा हुआ बदन कि आंखें इसी ताक में रहें कि कब उस ऊफान से कपड़े चिथड़े-चिथड़े हो जायें ।

जिस दिन कलूग गांव के दुकानदार लिमफात-मोय के तराजू के अनाज रखने वाले पलड़े के नीचे से पच्चीस ग्राम का चुम्बक निकाल कर सभी को दिखाने लगा था उस दिन कुछ लोगों ने उसकी वाह-वाही की थी । लिमफात-मोय को लोग बेईमान कह उठे थे । पर दूसरे दिन जब कलूग पनघट पर सभी स्त्रियों के सामने गन्दी हरकत कर रहा था तो कुछ लोगों ने उसे पागल और बीमार करार दिया और कुछ लोगों ने हैवान । उसी दिन वह अंधी सहोदरी के हाथ से लाठी छीन कर भी भाग गया था । उसी शाम वह मस्जिद से कुरान उठाकर शिवालय की वेदी और शिवालय की रामायण मस्जिद की रिहल पर रख आया था ।

कोठी के सरदार की पत्नी कलावती सरदारिन ने जिसकी कोई सन्तान नहीं थी, उसे अपने घर बुलवाया था । उसे दूध-भात देकर पूछा था ।

.. तुम इतने नटखट क्यों हो ?

कलूग ने उत्तर के बदले में उससे पूछा था ।

...तुम मुझे अपना बेटा बनाना चाहती हो न ?

तुम्हे कैसा मालूम ?

उसने जवाब नहीं दिया था अपनी ही बातें कही थीं ।

...इस गांव में तुम्हारे पति के ग्यारह बेटे हैं चार औरतों से । लोग खेतों में ईख बोते हैं तुम्हारा पति बच्चा बोता है । तुम बच्चे के लिए क्यों तड़फती हो !

वह सरदारिन के गाल को चूम कर आगे निकल गया था ।

उसे अपनी बुरी आदतों से छुटकारा दिलाने के लिए तीन दिन उसे मकतब और तीन दिन बैठक में बिठाया गया । पहले दिन उसने उस्ताद से सवाल किया ।

—'वार एण्ड पीस' किस की लिखी हुई पुस्तक है ।

दूसरे दिन भी उस्ताद बगलें झांकने लगा था जब उसने दूसरा सवाल किया था ।

—क्या सियासत को तहजीब आती है ।

तीसरे दिन का उसका सवाल बच्चों से था ।

—महात्मा गान्धी मुसलमान था या हिन्दू ।

उस्ताद ने सभी से कहा था कि उस बारह साल के लड़के पर शैतान सवार है ।

—किसी देवस्थान पर पेशाब कर दिया होगा ।

—मुझे तो पागल लगता है ।

—पर बातें तो बड़ी बुद्धिमानी की करता रहता है ।

और हरकतें शैतान की ।

—पागल है पागल

एक रात कलूग प्रधान के घर सो कर सुबह सभी की हुंडी से मुट्ठी भर रुपये अपने साथ लिये चला गया था । दूसरे दिन जब प्रधान ने उसे रोका और टोका तो वह दांतों को निपोड़ कर बोल गया था ।

—तुम तो तैंतीस साल से परधान हो तैंतीस साल मे हुंडी में हाथ डालते निकालते रहे हो । मैंने तो बस एक ही दिन ऐसा किया ।

एक बार वह गांव में टपक आये तीन राजनेताओं के भाषण के बीच खुद मंच पर खड़ा होकर दुनिया की कई भाषाओं में बोल उठा था ।

—राजनीति करने वाले को राजनेता कहना गलत है हर गीदड़ नेता थोड़े ही हो सकता है । जिसे आप लोग राज-नेता कहते हैं वह राजनीतिक है...राजनीतिक के चार हाथ होते हैं । एक में हड्डी होती है दूसरे में गन्दगी भरी शीशी, तीसरे हाथ में आम आदमी की गरदन होती है । और चौथा हाथ चमचों के सिर पर होता है ।

कलूग ने गांव के सब से अधिक भूकते रहने वाले कुत्ते के मुंह में हड्डी पकड़ा दिया था । गांव के कुंए में शीशे की गन्दगी उडेंल दी थी । हीरवा कंगाल की गरदन दबोच दी थी और जिन चार लड़कों ने उसकी जयजयकार की थी उनके बीच मस्जिद से उठाई गई हुंडी खोल दी थी ।

दूसरे दिन गांव की चार लड़कियों के साथ बलात्कार हुए ।

तीसरे दिन विधवा हीरमनिया की गाय चोरी चली गयी ।

चौथे दिन गांव की पाठशाला में आग लग गयी ।

पांचवें दिन बस्ती के हिन्दू मुसलमान आपस में झगड़ उठे ।

गांव को पागल बुलेलवा तीनकोनिया पर की इमली के पेड़ के पीछे छिपा हुआ कलूग को आते हुए देख रहा था । अंधेरा छाने लगा था । कलूग जैसे ही उसके पास पहुंचा बुलेलवा ने लपककर उसकी गरदन को अपने पंजे में ले लिया ।

—लोग तुम्हें पागल कहते हैं । बोल तू पागल है तो मैं कौन हूं ?

कलूग का दम घुटने लगा । जीभ बाहर आने लगी ।

—तू किसी के प्रश्न का उत्तर नहीं देता । देखता हूं आज कैसे नहीं देते हो । बोलो तुम कौन हो ।

कलूग किसी तरह बोल पाया ।

—गरदन छोड़ो ।

—पहले जवाब दो ।

—मैं . मैं सिर्फ दो सवालों का जवाब दे सकता हूं ।

ठीक है । पहला सवाल । तुम कहां जन्में ।

—प्रयोगशाला में ।

—क्या कहा ।

—यह तुम्हारा दूसरा सवाल है ।

—नहीं । मेरा दूसरा सवाल यह है कि तुम्हारे मां-बाप कौन है ।

—परखनली और रसायन ।

और वह गरदन छुड़ाकर भाग गया क्षितिज को छूने । क्षितिज भी भागने लगा । ●

चारकविताएं
आत्मकथ्य सहित
Rs. 250/-

इस अंक के विशिष्ट कवि

भवानी प्रसाद मिश्र की चार कविताएं

कविता मेरी, मैंने जब से लिखना शुरू किया, तब से अब तक एक धारा की तरह प्रवाहित है। शिखर से छूटी थी, तब एक प्रवाह था, तेज और काट देने वाला तक। मगर फिर उसे अपने परिवेश में विस्तार मिला और वह विस्तृत हुई, मंथर हुई, गहरी हुई, और उसमें लोगों द्वारा उपयोग की अधिक संभावनाएं पैदा हुईं, नहाने से लगाकर खेत सींचने तक की। उपयोग नहीं हुआ, तब भी वह प्रवाहित तो रहा। यह प्रवाह ही मेरी कविता का प्राण है। मैं आशा करता हूं कि मेरी कविता मुझे अपने साथ-साथ सागर तक ले जायेगी जहां शांति में वह भी लीन होगी और मैं भी।

—भवानी प्रसाद मिश्र

सन्यास स्वप्न

सुगंध का एक बादल
हर पल घना होता जा रहा है मन में
हर क्षण घनी होती जा रही है
कौशेय वस्त्रों की सरसराहट
मैंने जो सब के लिए चाहा था
वह शायद इतने दिनों के बाद
अब मुझ से शुरू हो रहा है
धब्बे सौ तरह के मेरे
धो रहा है कोई प्रकाश,पुंज
आसपास उग आया है जैसे
करौंदों का कोई निकुंज
शाम होते न होते
कलियों से लद जायेगा
और जब आयेगा आधी रात
अपनी विजय के उल्लास में यहां
कोई काम क्रोध मद
तो फेंकूंगा मैं अपने भीतर बाहर की
यह सुगंध उस पर
मुट्ठी भर भर कर अबीर की तरह
और सरसराहट कौशेय वस्त्रों की
उस पर तीर की तरह
विचलित होगा काफ़िला विजेताओं का
इस अकस्मात् को छूकर
फलित होगा
या होने लगेगा फलित सार्थकता में
सौ तरह से दलित
सुगंध का बादल
छंद कौशेय वस्त्रों का।

सुगन्ध के सार्थवाह

सुगंध के झोंकों के
सार्थवाह
क्या लेकर निकलते
उस दिन तुम उन्हें
मिले नहीं
भंडराते रहे वे
सरोवर के आसपास
लेकिन उस दिन तुम
अपने सरोवर में
खिले नहीं।

तारे

कितनी ग्रांखों में ग्रांखें डालकर
झांका है मैंने
ग्रांखों में ग्रांखें डालकर
इस तरह ग्रक्सर
ग्रांखों का उजाला नहीं
ग्रपने कातर ग्रांखों की पुतलियों का
कालापन ग्रांका है मैंने
याने
ग्रंधेरा मिला है ग्राखिरकार
मुझे हर ग्रांख से
केंद्र काला जो ठहरा हर ग्रांख का
केंद्र हर ग्रांख का
छाया ग्रंकित करने लायक
उजाला जो ठहरा
ग्रौर ग्रब मैं चमकता ग्रांखें बचाकर
रात के कालेपन में
झांकने लगा हूं
ग्रजब बात है कि घने उसे कालेपन से
उजाला पाकर उसे
भीतर झांकने लगा हूं
बेशक काला है ग्रांख का तारा
तारा रात का उजाला है !

तस्वीरें तुम

तस्वीरें तुम खींचो
ग्रौर रंगो तुम
ग्रपनी खींची हुई तस्वीरें
मेरे मन में तो वे
सीधी उतर ग्राती हैं
ग्रौर वहां
कभी ग्रकेली-ग्रकेली
तो कभी
ग्रापस में बतयाती हैं
मैं सुन पाता हूं
उनकी बातें
ग्रौर महव हो जाता हूं उनमें
कभी लिख देता हूं
सुनी-सुनाई
उनकी पीरें
तस्वीरें
खींचो तुम !

गांधी स्मारक निधि, महात्मा गांधी मार्ग,
नई दिल्ली.

तीन क्षणिकायें

(एक)

कैसा विचित्र संयोग
मैं टूटा
तुम्हारे लिये
तुम बिखर गयीं
सबके लिये,

(दो)

मुझको रो लेने दो
सर रखकर
ग्रपने ग्रांचल में
हो सकता है
इस बार
सावन न बरसे,

(तीन)

क्षणों से भी छोटा
तुम्हारा मिलन
जिसे भुलाने की खातिर
गंवा दिया मैंने
सारा का सारा जीवन

ग्रादित्य श्रीवास्तव
78 बड़ग्रा बाजार शाहाबाद, हरदोई
241124 (उ० प्र०)

आदमी और पेड़

प्रदीप पंत

दो कविताएं — Rs. 100/-

एक पेड़ है
जिस पर चिड़िया बैठी है।
एक पेड़ है
जो गिर गया है।
एक पेड़ है
जो गिरने वाला है।
एक आदमी है
जिसके कंधे पर बच्चा बैठा है।
एक आदमी है
जो मर गया है।
एक आदमी है
जो मरने वाला है।
पेड़ है
आदमी है।
आदमी है
पेड़ है।
आदमी पेड़ को काटता है
आदमी की प्रकृति है
जो उसे छाया देता है
उसी पर रौब गांठता है।

गजल

अनिल खम्परिया

Rs. 50/-

आफ़त गले से खुद ही लगा ली है क्या करें
हाथों में उनके फिर से दुनाली है क्या करें
आंखों में लिए ख्वाब जिये जा रहे थे हम,
पर रहबरों ने नींद चुराली है क्या करें।
खुदगर्जी ने लूटा यहां इन्सानियत का खूं,
मजहब के नाम इक नई गाली है क्या करें।
सूखे से बचे तो यहां सैलाब में फंसे,
क़ुदरत की रीति सबसे निराली है क्या करें।
कुछ करके ही गुजरेंगे अनिल इस जहां से अब
हमने ये कसम सर पे उठाली है क्या करें।।

कृष्ण कुटीर जालपा देवी वार्ड, कटनी (म० प्र०)

अपना पहाड़

बहुत पीछे छोड़ आया हूं मैं
अपना पहाड़।
वर्षों की दूरी पार करता हुआ
गृह-विरह-आतुर
पहुंच जाता हूं मैं वहां
अक्सर,
जहां ठेकेदार और जंगलात के
अधिकारियों ने मिल कर
कटवा दिये हैं पेड़
ताकि पहाड़ आसानी से टूट सकें
यानी पहाड़ वालों को वे
आसानी से लूट सकें।
लूट कर
बहुत पीछे छोड़ आया हूं मैं
अपना पहाड़।
झुर्रियों के बीच फंसी
आंखों की टकटकी में कैद हो
वर्षों की दूरी पार करता हुआ
पहुंच जाता हूं मैं वहां
अक्सर,
असहाय वैधव्य को जहां
विकल प्रतीक्षा रहती है
शहर से मनीआर्डर लेकर
आने वाले डाकिये की
ताकि दुख कुछ घट सकें
महीने के कुछ और दिन कट सकें
और इस बीच
पौधे पेड़ बनें
बच्चे बड़े बनें
पेड़ों को ठेकेदार काटें
बड़े शहरों की ओर भागें
और
झुर्रियों के बीच फंसी आंखें
टकटकी भी न लगा सकें।—

संपादक — समाज कल्याण'
जीवनदीप बिल्डिंग, संसद मार्ग नई दिल्ली-110001

शब्द और रंग

अब्दुल बिस्मिल्लाह

आंखों में इतने रंग उभरते हैं
कि धरती का रंग कम पड़ जाए
पर सारे के सारे रंग
अपनी मिठास में भी कड़ुवे हैं
और रंगों की कड़ुवाहट
किसी चित्र के लिये क्या उपयुक्त होती है?
वैसे तो
रंगों का ही नहीं
शब्दों का स्वाद भी जहरीला है
पर शब्द हैं
कि छलने में उस्ताद होते हैं
जिसने मुझे छला
वह शब्द था
और मेरे भीतर का जो कुछ भी
छला गया
वह रंग था
रंग
जो पराजित हुआ
जिसने
समय का
दुरुपयोग नहीं किया
जिसने उत्तेजना में भी
नियम का महत्व समझा
और जो
उस आंगन में अपमानित हुआ
जहां वह
लहक कर लुढ़का था
गुनाह न करके
और जो
अपने पछतावे पर
पछताता रहा
वह रंग
एक शब्द से हार गया
शब्द
जो निकलता था
उन होंठों से
जिन पर वह रंग
देर तक खिला रहा
और अपनी छुवन से
जिन्हें रोमांचित कर गया
शब्द
उस दरार से फूटे थे
अपने भीतर की दरार छिपाए
जिसमें
आंखों की पूरी दुनियां
दफ़न हो रही है
और आकाश कड़ुवे रंगों से भर कर
शब्दों के छल को
इस तरह छलका रहा है
कि भीतर का सारा मवाद
कविता बनकर बह रहा है
और कविता
अपने बुजदिल कगारों से
लड़ रही है।

इन्तजार

डा० रामजी मिश्र

अब वक्त ग्रा गया है
लेकिन ग्रभी वक्त नहीं ग्राया है।
मैं जब ग्रांखें मूंद कर करूंगा यात्राएं।
क्योंकि मुंदी ग्रांखें देखती हैं
पिछली यात्राग्रों को
सिर्फ रंगीन परछाइयां
जब कि खुली ग्रांखों के सामने
भूख बिलबिलाती है,
देखते-देखते ज़हरीली हवाग्रों से
सुलगने लगते हैं हरे-हरे पौधे।
गिद्धों की घिनौनी शक्लें
ग्रौर उनकी मनहूस ग्रावाजें न देख सकने के लिए
ग्रौर न सुन सकने के लिए
जब मैं बन जाऊंगा ग्रंधा ग्रौर बहरा
तब भी सिर्फ मुंह खुला रहेगा
शब्द ग्रावारों की तरह
गलियों, सड़कों, चौराहों पर
घूमेंगे ग्रौर उनके ग्रर्थ
ग्रंध गुफाग्रों में क़ैद होंगे
शायद कभी ग्रर्थ पाने के लिए
ये शब्द सुधर जाएं
शायद वे फिर मेरे पास
सही फार्म में लौट ग्राएं।

50/

मैं

ऊपर से
ग्रौर
नीचे से भी
जलाया गया
मैं
एक मांस-पिंड हूं।
बीच में जीता हुग्रा
ग्रोर-छोर मरा हुग्रा।

30/

Total Rs. 80/

1644, सोहनगंज, सब्जीमंडी दिल्ली-110007

गीत

सुरेश विमल

मैं बहुत निर्बल हूं ग्रौर ग्रभिशापित
ग्राम-ग्रादमी के नाम से विज्ञापित !

Rs 50/-

खेता हूं मैं संबधों की नाव
प्रवचनाग्रों के ग्रंतहीन सागर में
मुंह ग्रपना डाले हुए
संभावनाग्रों की एक रीती गागर में

मैं बहुत प्यासा हूं ग्रौर संतापित
युग-युगों से उत्पीड़ित, प्रताड़ित !

ग्रनुभूत लहराता है मेरे ग्रासपास
हर क्षण एक दमघोंटू गंध सा
भीतर ही भीतर कराहता है मन
एक ग्राहत ग्रनुबंध सा

घरौंदा बना हूं मैं यंत्रणाग्रों का
शिकार हुग्रा हूं मैं कुमंत्रणाग्रों का।

ग्रकाल-मृत्यु प्राप्त मेरे स्वप्नों की
प्रेतात्माएं मुझे सताती हैं
पल-पल टीसती विवशताएं
रह-रह कर मुझे रुलाती हैं

मैं एक शून्य हूं, नि.शब्द ग्रौर ग्रंधेरा
निक्षिप्त, लहूलुहान एक चेहरा !

जी-336, नौरोजी नगर, नई दिल्ली-110029

गीत

विद्यानन्दन राजीव

मन उदास चेतना ठगी-सी है
टूट रहे रिश्तों के नाम !
और हुए हैं सकरे गलियारे
दरवाजे रहते हैं बंद
हलचल खोयी है चौबारे की
मौन हुए हैं मीठे छन्द
निजता हर सांस में जगी-सी है
सम्मुख है दुखते परिणाम !
तंग हुआ पिछले बटवारे में
चौड़े आंगन का फैलाव
अब न दिखायी देते बतियाते
रात-रात दहकते अलाव
नफरत में हर नजर पगी-सी है
रोज नये उगते कुहराम !
कहां गये दृश्य समारोहों के
एकाकी दिखता त्योहार
सारा मकरन्द मधुर सोख गयी
कैसी यह गर्म है बयार
चौतरफा आग यह लगी-सी है
संभव दिखता नहीं विराम !

हिन्दी विभाग राजकीय स्नातकोत्तर
महाविद्यालय (म० प्र०)

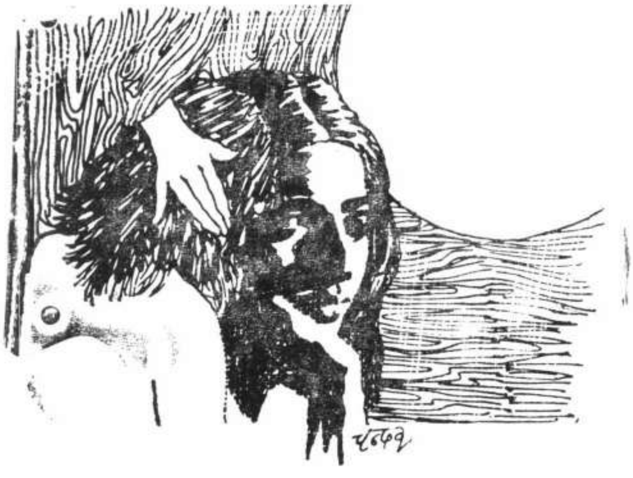

अनर्थक यात्रा

कु० रजनीपुरी

जीवन एक उलझन,
मंजिल बहुत दूर
अनगिनत पगडंडियां
रास्ते में भटकन
भूल भुलैयां
न जाने कितने ही प्रलोभन
हम लालची
कर बैठते हैं सौदा
भटकते रहते हैं जन्म-जन्म
उस दूर टिमटिमाते
दीपक की लौ पकड़ने को
बेचैन मगर उत्साही
बार-बार भूल जाते हैं रास्ता
और फिर नए सिरे से
करके प्रारम्भ यात्रा
उसी मंजिल तक पहुंचने के लिए
हे प्रभु ! हमें यह राह दिखाओ
हमें थामो और मंजिल तक पहुंचाओ ।

(सी-2-बी/64-ए, जनकपुरी,
नई दिल्ली-110058)

पास या दूर

भानु चन्द्र, 'मधुपुरी'

मैं तुम्हारे लायक नहीं,
तुम मेरे लायक नहीं,

फिर भी हम साथ रहते हैं ।
न तुम मुझे छोड़ सकती हो,

न मैं तुम्हें,
फिर भी हम साथ रहते हैं ।

तुम सुहागिन होते हुए भी कुंवारी हो,
मैं शादीशुदा होते हुए भी कुंवारा हूं ।
फिर भी हम साथ रहते हैं ।

मंथन साहित्य परिषद, छोटी खगौल, खगौल (पटना)

(पृष्ठ 4 का शेषांश)

राम विलास के बदले तेवर को देखकर एक बारगी अपने का बदला लेने का दिखावा करता है। यह महाजनी सभ्यता का एक ऐसा दस्तावेज है जिसका सही चित्र रेणु ने अपने इस पात्र के माध्यम से उरेहा है।। राम विलास यानि बिलसिया एक ऐसा पात्र है जिसमें बदलता समय बिंबित होता है। और जिसे देखकर प्रेमचन्द के "गोदान" का "गोबर" याद आ जाता है। वह गोबर की पीढ़ी का ही एक चरित्र है जो महाजनी सभ्यता की समस्त गलाजतों को उखाड़ फेंकने को उद्यत लगता है। उसके तेवर से महाजनी सभ्यता का प्रतिनिधि मिसर भी एक क्षण के लिए हतप्रभ हो जाता है। इसी कहानी के दूसरे पात्र रामबिलास की मां, और पत्नी झुमकी निम्न वर्ग की ऐसी पत्नियां हैं जो एक साथ पीड़ा और खुशी, निराशा और आशा जीते भोगते हैं। इन कथा पात्रों को रेणु ने ग्रामीण परिवेश में उभारने की सफल चेष्टा की है।

रेणु ने तो वैसे राजनीतिक संस्पर्श की कई कहानियां लिखी है, लेकिन राजनीति जब मूल्यहीन, दिशाहीन और व्यक्तिगत स्वार्थों पर आधारित हो जाती है तो एक सामान्य कार्य कर्त्ता की पीड़ा और कुंठा बहुत कुछ सोचने को बाध्य करती है। "आत्मसाक्षी" कहानी का गनपत ऐसा ही पार्टी कार्य कर्त्ता है जो अपनी पार्टी के लिए जीता मरता है, लेकिन ऊपर के स्वार्थी तत्व अपने स्वार्थों के लिए पार्टी के दो टुकड़े कर देते हैं। पार्टी का यह बंटवारा किसी सिद्धांत के तहत नहीं होता है, यह गनपत जैसे सीधे और भोले-भाले सिद्धांत के प्रति समर्पित कार्यकर्त्ता का मोह-भंग तो करती ही है, उसे गहरे तक तोड़ती भी है। आज यह मात्र गनपत की पीड़ा नहीं होकर तमाम राजनीतिक दलों के आम कार्यकर्त्ताओं की पीड़ा है। रेणु की एक और खास कहानी है "नैना जोगिन", जिसकी नायिका रतनी एक साथ ही मर्द और औरत दोनों हैं। वह उतनी बोल्ड, बेपर्द और बेबाक है जितनी कोई औरत अक्सर नहीं होती। यह सब कुछ उसके जीवन में ऐसे ही नहीं आ गया समाज ने उसे ऐसा बनने को बाध्य किया। सात साल की उम्र में जिसके साथ बलात्कार किया जाय वह रतनी से अलग और कुछ नहीं बन सकती है। उसे भला आदमी नाम से ही चिढ़ है। क्योंकि इसके सत्य को वह जितना जानती है उतना कोई नहीं जानता। रतनी जैसी चरित्र तो गांवों में बहुत मिलती है, लेकिन संवेदना और बोल्डनेस के साथ चित्रित करने की क्षमता रेणु जैसे कलाकार में ही हो सकती है। कहानी के अंत में कहानीकार का यह शब्द-"कोई जादू जानती है, सचमुच जानती है रतनी।"

"कोई शब्द उसके मुंह में अश्लील नहीं लगता।"

यह रेणु की कला का भी सत्य है। यह जादूगरी रेणु की है कि रतनी जैसी नैना जोगिन अपने परिवेश से उभरकर आ जाती है अपनी संपूर्णता में और उसके मुह का कोई भी शब्द अश्लील नहीं लगता। रेणु की यह कहानी भी इतनी बेबाकी के बावजूद जुगुप्सा नहीं जगाती, कहीं अश्लील नहीं लगती। यह लेखक की आम आदमी से संप्तक्ति के बिना संभव नहीं है और इस दृष्टि से रेणु का कोई सानी नहीं है।

—लोक स्वास्थ्य अवर प्रमंडल, पानी टंकी,
डालटन गंज-822101 बिहार

क्षणिकाएं

सुमन शर्मा

सांझ थी एक
सो भी चली गई
आंगन का अकेलापन
और मैं
रात भर बतियाते रहे।

x x x

सांझ आंगन में उतर आई
और दिन सिमट गया।
देवदार अपनी ऊंचाई मापने लगे
और अंधेरा बिखर गया।
भीगी शिकायतों का बहीखाता लिए
हम आज फिर लौट चले।
चिरवर्षों का सन्यासी गौतम
अब कहां लौटेगा।

x x x

किस सादगी से पत्ते गिरते हैं
मन की उदासियां
पगडंडियों के मोड़ बन के
रह जाती हैं।

x x x

आज शाम बहुत भीगी है
तुम इसे कहीं छू मत लेना
आज बादल बहुत काले है
शायद बरस जाएंगे
पहाड़ों की बरसात
और उसमें लिपटी तुम्हारी याद
पत्थरों पर बैठी
पिछले साल की शाम
आज सब कुछ बिखर गया है
तुम इसे समेट मत लेना
ये मेरे सूनेपन की बहार है।

—संपादक, "कुरुक्षेत्र" कृषि भवन, नई दिल्ली

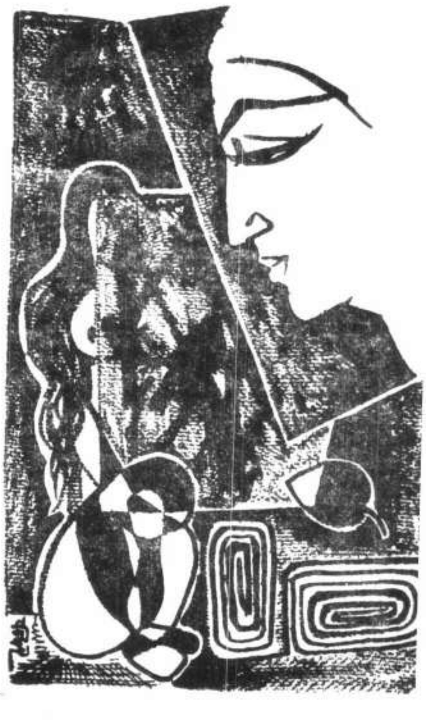

Weekly 23 - Rs 1250

समकालीन रंगकर्म का नया आयाम : नुक्कड़ नाटक

अंग्रेजी में प्रचलित शब्द "स्ट्रीट प्ले" के लिए हिन्दी में "मंच-मुक्त", "सड़क", "चौराहा" और "नुक्कड़" नाटक जैसे शब्दों का प्रयोग पिछले कुछ समय से होता आ रहा है। यूं तो ये समानार्थक से लगने वाले शब्द प्राय: बंद प्रेक्षाग्रह और प्रोसीनियम थियेटर तथा उसके अलगावपूर्ण मायावी संसार से बाहर निकल आए हर तरह के रंगकर्म के लिए सामान्यत: और व्यवस्था विरोध के नाटक के लिए विशेषत: प्रयुक्त किए जा रहे हैं; परन्तु शाब्दिक दृष्टि से विचार करने पर इनके बारीक फ़र्क को भी नकारा नहीं जा सकता। जहां तक बंद-प्रेक्षागृह को छोड़ने का प्रश्न है "ओपन एअर" या मुक्ताकाशी मंच भी उससे भिन्न प्रकार का रंगमंच है। लेकिन दृश्य-बंध मचोपकरण, वस्त्र-विन्यास, प्रकाश, ध्वनि-प्रभाव इत्यादि का प्रयोग करने के कारण आमतौर से और कलाकार तथा दर्शक के बीच की दूरी के कारण खासतौर से मंचमुक्त, सड़क या नुक्कड़ नाटक के भिन्न हैं। हिन्दी में इस मंच पर भी "अंधेरी नगरी", "शुतुरमुर्ग", "बकरी", "सिंहासन खाली है" तथा 'एक था गधा उर्फ़ अलादाद खां" जैसे व्यवस्था-विरोध के प्रखर नाटक बहुतायत से खेले जाते रहे हैं—खेले जा रहे हैं; परन्तु व्यवस्था-विरोध-मुक्ताकाशी मंच की अनिवार्य शर्त नहीं है। वहां सभी प्रकार के नाटक समान भाव से प्रस्तुत किए जाते हैं। कलाकार और प्रेक्षक के अलगाव को दूर करने की दृष्टि से इधर "बेसमैंट थियेटर" का भी काफ़ी प्रयोग किया जा रहा है। परन्तु यह थियेटर ऐसे तरल पदार्थ की तरह है जो बर्तन के हिसाब से अपना रूप ग्रहण कर लेता हैं। यह मंचयुक्त भी हो सकता है और मंच-मुक्त भी; यह दर्शकों को अभिनेता से अलग भी कर सकता है और उन्हें एक धरातल पर भी ला सकता है। इसमें 'स्टूडियो-1' या 'रूचिका' का बहुआयामी भव्य दृश्य-बंध भी लगाया जा सकता है और किसी कल्पनाशील निर्देशक द्वारा उसकी आवश्यकता को एकदम नकारा भी जा सकता है। कई अर्थों में अलग होने के बावजूद यह छोटा-सा बंद प्रेक्षाग्रह मूलत: और व्यवहारत: प्रोसीनियम की जरूरतों से परिचालित होता है। इसके बाद "बेसमेंट थियेटर" की मच-हीनता एवं अन्तरंगता और "ओपन एअर" की मुक्ताकाशिता लेकर एक नवीन मंच-प्रकार उद्भूत होता है जिसे आज हम "मंच-मुक्त" नाटक कहते हैं। सड़क और नुक्कड़ नाटक भी मोटे तौर से मंच-मुक्त नाटक ही हैं। सदियों से सुरक्षित, विशिष्ट और निश्चित स्थान (मंच) को छोड़कर बीच मैदान में आते ही नाटक का व्याकरण, मुहावरा, तेवर, अन्दाज और सौन्दर्य-बोध एकदम से बदलने लगता है। यह नाटक सज्जा और प्रकाश के सभी साधनों का परित्याग करके—अयथार्थ को यथार्थ बनाकर दिखाने के परम्परावादी भ्रम-जाल को तोड़कर कलाकार नामक एक अति सम्वेदनशील सामाजिक इकाई तथा दर्शक नामक दूसरी मानवीय एवं सामाजिक इकाई को एक दूसरे के आसपास लाकर खड़ा कर देता है; जिससे वे अपने आप से और अपने परिवेश से जीवन्त साक्षात्कार कर सकें। यह तत्वत: एक धार्मिक अनुष्ठान की तरह है जिसमें पंडित, दूल्हा-दुल्हन या कुछ और लोग अपनी थोड़ी-बहुत विशिष्ट वेशभूषा या सामयिक स्थिति के कारण कुछ अलग दिखने के बावजूद सबमें शामिल ही होते हैं। ठीक उसी तरह यह भी एक सामूहिक क्रिया कलाप है—एक सांझी-यात्रा है—जिसमें कर्त्ता—और दृष्टा की अलग-अलग मगर निश्चित और सक्रिय भूमिका हैं। पहले से निर्धारित टिकिट का न होना तथा दर्शक को अपने पास बुलाने के बजाय स्वयं उसके पास पहुंचने की प्रक्रिया भी इसके अनुभव में कुछ बुनियादी अन्तर पैदा कर देती है। पारस्परिक संबन्धों के स्वरूप और उनकी प्रकृति में इससे भिन्नता आती है।

स्थान की दृष्टि से "मंच-मुक्त" का अर्थ अनिवार्यत: भीड़ के बीच में होना नहीं है। किसी अपेक्षाकृत शान्त और निरापद स्थान का चुनाव भी ऐसी प्रस्तुति के लिए किया जा सकता है।

जयदेव तनेजा

लगभग यही स्थिति "नुक्कड़" शब्द की है। "बीचोंबीच" के बजाए "मोड़" या "छोर" फिर भी अपेक्षाकृत सुरक्षित स्थान होता है। इस दृष्टि से "सड़क" और विशेषत: "चौराहा" नाटक शब्द एकदम जन-सामान्य के बीच में होने का एहसास कराने के कारण इस प्रतिबद्ध रंगकर्म की मूल जुझारू प्रकृति के अधिक अनुकूल प्रतीत होते हैं। परन्तु —

शब्द की अन्य अर्थ-ध्वनियों पर गम्भीरता से विचार करें तो हम पायेंगे कि "नुक्कड़" का अर्थ "नाका" भी होता है और "नाका" का अर्थ है—किसी नगर, बस्ती या दुर्ग इत्यादि में घुमने का प्रमुख द्वार! इसलिए आम आदमी के प्रति होने वाले अन्याय और अत्याचार तथा उसके दु:ख-दर्द के लिए जिम्मेदार राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक—सभी सत्ताप्रिय जन विरोधी ताकतों के घिनौने चेहरों से उनके सिद्धांतवादी खूबसूरत नकाब नोंचकर सच्चाई से हमारा सामना कराने के लिए प्रतिबद्ध यह नाट्य-रूप एक ओर व्यवस्था के अभेद्य दुर्ग को तोड़ने और दूसरी ओर आम आदमी की मामूली दुनिया में जाने का प्रवेश द्वार होने के कारण "नुक्कड़ नाटक" ही कहलाने का अधिकारी है। इस शब्द में इस नाट्य-कर्म की सम्पूर्ण चेतना और प्रकृति, इसका रंग-रूप, आकार-प्रकार और इरादा-सब

एक साथ अभिव्यक्त हो उठते हैं। इसलिए वे तमाम नाटक जो अन्याय, अत्याचार और शोषण के विरुद्ध आम आदमी को जागरूक बनाने के उद्देश्य से गली, सड़क, नुक्कड़, चौराहे, पार्क, या स्कूल, दफ्तर, कालोनी, मिल अथवा कारखाने के किसी भी खुले स्थान पर, सामान्य-जन के बीच जन-सामान्य ही की भाषा में प्रस्तुत किए जाते हैं—"नुक्कड़ नाटक" कहे जा सकते हैं।

यूं तो हमारे परम्परागत लोक नाटकों में भी हास्य-व्यंग्य के माध्यम से सत्ता-विरोध का स्वर हमेशा से ही मौजूद रहा है परन्तु प्रेम की भावातिरेकपूर्ण अथवा हास्य-प्रधान कथाओं के बीच में आने वाला वह व्यंग्य-स्वर गहरा प्रहार करने के बजाए दर्शकों को थोड़ी देर के लिए मिर्च-मसाले का हल्का-तीखा या चटपटा सा मजा दे जाता था। इसलिए नुक्कड़ नाटक का यह वर्तमान रूप उस परम्परा से जुड़े होने के बावजूद कहीं-न-कहीं ग्रोतोवस्की, ब्रेख्त और प्रत्यक्षतः बादल सरकार के तीसरे रंगमंच की अवधारणा से भी बहुत दूर तक प्रभावित हुआ है। बादल सरकार के "जुलूस" ने इस आन्दोलन को बढ़ाने और लोकप्रिय बनाने में निर्णायक भूमिका निभाई है। प्रायः दूसरी तरह के नाटक करने वाले अनेक नाट्य-दलों और रंग-कर्मियों ने भी 'जुलूस' के सैकड़ों प्रदर्शन करके नये प्रतिमान स्थापित किए हैं। हमारे रंग-आन्दोलन को नयी व्यापकता और नूतन दिशा प्राप्त हुई है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, शरद जोशी, डॉ॰ लाल, शंकर शेष, मणि मधुकर, सुशील कुमार सिंह, रमेश उपाध्याय, असगर वजाहत, कुसुम कुमार जैसे प्रसिद्ध नाटककारों के अनेक नाट्यालेख प्रेक्षागृहों के भीतर और उनसे बाहर आम आदमी की लड़ाई को विविध स्तरों पर अभिव्यक्त करने की दृष्टि से समान रूप से प्रभावी सिद्ध हुए हैं। अन्याय, शोषण और अत्याचार के खिलाफ निर्भय आवाज उठाने वाले इन सत्ता-विरोधी नाटकों की प्रखरता और तीव्रता का एक प्रमाण यह भी है कि जगह-जगह रंगकर्मियों पर तरह-तरह की पाबंदियां लगाई जा रही हैं और पुलिस से सीधी झड़पें भी हो रही हैं।

हर शहर और नाट्य-दल अपनी-अपनी जरूरत के मुताबिक नये नाटककारों और नये नाट्यालेखों को जन्म दे रहा है। नाट्यालेखन के सामूहिक प्रयास भी हो रहे हैं।

यह उल्लेखनीय और प्रसन्नता की बात है कि आज हमारे देश में जहां कहीं भी रंगकर्म हो रहा है वहां इन "मंचमुक्त", "सड़क" या "नुक्कड़" नाटकों की सक्रियता एवं प्रभावशीलता जंगल की आग की तरह लगातार फैलती जा रही है। सामयिक, सार्थक और उत्तेजक कथ्य वाले इन जन-जागरण प्रधान जरूरी प्रदर्शनों ने जन-सामान्य में नई हलचल पैदा की है। दिल्ली में "जन नाट्य मंच" और "प्रयोग", चण्डीगढ़ में "जनवादी रंगमंच", बीकानेर में "रंग भारती", नैनीताल में "युवा मंच" तथा "एकायन", आगरा में "रंगकर्मी", रायपुर में "हस्ताक्षर", "अवंतिका", "रचना", "सिलसिला", जबलपुर में "विवेचना", पटना में, "अनागत", "जन नाट्य संघ", "सर्जना", "जनवादी कला एवं विचार मंच" तथा "कला संगम" रांची में "रंगमंच" इत्यादि के अतिरिक्त छोटे-बड़े सभी रंग-नगरों में ये नाटक अनगिनत लोगों तक पहुंच चुके हैं। सम्वेदनहीन और अमानवीय होते जा रहे मनुष्यों में प्रतिक्रिया करने के अंकुर फूट रहे हैं। इंसान की शक्ल में अपने जिन्दा होने का एहसास जाग रहा है। कुल मिलाकर, वर्तमान रंग-परिदृश्य काफी उत्साह-वर्द्धक है। ऐसा लगता है जैसे हम सही इरादे से, सही रास्ते पर हैं और बहुत जल्दी ही अपनी मंज़िल को पा लेंगे। परन्तु गहराई में जाकर गम्भीरता और सूक्ष्मता से यदि हम अपने समसामयिक इस रंगकर्म का अध्ययन करें तो पायेंगे कि वस्तुस्थिति ठीक वही और वैसी ही नहीं है जैसी कि हमें ऊपर से अपने अति-उत्साह में दिखाई दे रही है। इसके भीतर ढेरों अन्तर्विरोध हैं, कमजोरियां हैं, उलझनें और समस्याएं हैं। अपने समय की चुनौतियों का सही उत्तर दिए बिना हम आगे नहीं बढ़ सकते।

सबसे पहली बात यह है कि नुक्कड़ नाटक वाला हमारा तथाकथित राजनैतिक अथवा प्रतिबद्ध रंगमंच प्रायः नारेबाजी के सपाट स्तर तक उतर आता है और गिने चुने संयोजनों, गति विधानों और मुद्राओं-भंगिमाओं एवं भाषणों के कारण बहुत जल्दी ही कल्पनाविहीन-पुनरावृत्ति का शिकार होने लगता है। यह प्रदर्शन रचनात्मकता के अभाव में अपने दर्शकों को सघन एवं उत्तेजक नाट्यानुभव देने के स्थान पर प्रायः एक कुतूहल अथवा क्षणिक आवेश भर देकर ही समाप्त हो जाते हैं। हमारे अधिकांश राजनैतिक-सामाजिक व्यंग्य नाटकों में प्रायः गहरी-समझ, सूक्ष्म-विश्लेषण, तथा अन्तर्दृष्टि का अथवा उसे समग्रता से सम्प्रेषित करने वाली कला का अभाव होता है। यही कारण है कि ये नाटक "यथातथ्य समाचार पत्र धर्मी यथार्थ के स्तर से आगे नहीं बढ़ पाते। माओ त्से तुंग के अनुसार, "कोई भी कला (रचना) यदि कलात्मक दृष्टि से कमजोर है तो उसका कथ्य राजनीतिक दृष्टि से कितना ही प्रगतिशील क्यों न हो, उसका प्रभाव दुर्बल हो जाता है।" घोषित रूप से मार्क्सवादी लेनिनवादी रंगकर्मी उत्पल दत्त का यह विचार भी पूर्णतः सही है कि, "कला समाचार पत्र नहीं है जिससे सिर्फ सूचना दी जाती हो, न ही कला कोई भाषण है। कला पार्टी की नीति, सूखे समाचार और वैचारिक वाद-विवाद से अलग है। रंगमंच का काम आज की वास्तविकता को कलात्मक तरीके से प्रस्तुत करना है। साथ ही भविष्य की ओर इंगित करके यह भी बताना कि वास्तविकता कैसी होनी चाहिए।" इसके लिए यह जरूरी है कि श्रेष्ठ रचनाकार इस क्षेत्र में आयें और नुक्कड़ नाटक की अपेक्षाओं, आवश्यकताओं और सीमाओं को ध्यान में रखकर अपने नाटक लिखें। मंच के लिए लिखे गए नाटक सड़क पर जमते नहीं और नौसिखियों द्वारा बनाए गए आलेख प्रायः कला और अन्तर्दृष्टि विहीन होते हैं।

नुक्कड़ अथवा सड़क नाटक का एक विशिष्ट लचीला फार्म

(शेष पृष्ठ 52 पर)

2500 Ac 1251

तमिल लेखक अखिलन से बातचीत

• आरसु

श्री पी० वी० अखिलाण्डम (कलमी नाम अखिलन) तमिल कथा-साहित्य के शीर्षस्थ लेखक हैं। भारत की आज़ादी के आन्दोलन में उन्होंने सक्रिय भाग लिया था। लंबे अरसे तक वे डाक विभाग में एक कर्मचारी थे। 1966 से लेकर मद्रास के आकाशवाणी केन्द्र में प्रोड्यूसर (कार्यक्रम) के पद पर विराजमान हैं।

उनकी साहित्यिक साधना सन् 1938 में (सत्रह वर्ष की आयु में) शुरू हुई थी। उपन्यास, कहानी, निबंध, नाटक और बाल साहित्य की विधाओं में उनकी लगभग पचास कृतियां अब तक प्रकाशित हो गयी हैं। उनके कुछ उपन्यास फिल्मीकृत भी हो गए हैं। उनकी सहित्यिक उपलब्धियों को कई पुरस्कार मिले हैं। कलैमगल, तमिल साहित्य अकादमी, केन्द्रीय साहित्य अकादमी, तमिल विकास परिषद्, सोवियत लैंड आदि पुरस्कार उनमें शामिल हैं। सन् 1976 में 'चित्तिरप्पावै' नामक उपन्यास को भारत का सर्वोच्च साहित्यिक पुरस्कार ज्ञानपीठ भी मिला। अखिलन की साहित्यिक उपलब्धियों के विभिन्न पहलुओं को लेकर चार शोध-प्रबन्ध तैयार किए गए हैं। वे कई साहित्यिक संस्थाओं के कर्णधार रहे हैं। संप्रति अखिल भारतीय तमिल लेखक संघ के उपाध्यक्ष हैं। उन्होंने कई विदेश यात्राएं की हैं।

साहित्य के बारे में उनकी परिकल्पनाओं को बटोरने के लिए मैंने एक विनम्र कोशिश की। मेरे प्रश्न और उनके उत्तर संवाद रूप में यहां अवतरित हैं।

● **एक सृजनशील साहित्यकार की हैसियत से सृजन के लक्ष्य के बारे में आपका मौलिक विचार क्या है?**

आम जनता और उनसे जुड़ी हुई समस्याओं में मुझे रुचि है। कुछ समस्याएं वैयक्तिक भावनाओं से संबन्धित हैं और कुछ समस्याओं के राजनीतिक और आर्थिक आधार भी होते हैं। इस प्रकार की समस्याएं मुझे सजग बनाती हैं। मैं उनके बारे में सोच-विचार करता हूं और साहित्य-सृजन के माध्यम से उनपर अपनी प्रतिक्रियाएं व्यक्त करता हूं। कुछ करने की बलवती इच्छा मुझे लिखने को मजबूर करती है।

● **क्या साहित्य द्वारा समाज में स्थायी परिवर्तन परिलक्षित कर सकते हैं?**

मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि साहित्य में समाज को बदलने की शक्ति और क्षमता निहित है। रामायण ने देश और काल को जीत लिया है। देश-विदेश की अगणित भाषाओं में उसके रूपान्तर निकले हैं। कुछ साल पहले रामायण पर आधारित मेरे एक नाटक का मंचन सोवियत संघ में किया गया था। तदुपरांत मुझे हज़ारों चिट्ठियां मिलीं। कई औरतों ने छोटी-मोटी बातों को उठाकर तलाक नहीं मांगने की प्रतिज्ञा की थीं। सीता के चरित्र से वे बहुत प्रभावित हुईं और समझौता करके पतियों के साथ रहने के लिए इससे उन्हें प्रेरणा मिली। यह मात्र एक मिसाल है। चालीस सालों के अपने साहित्यिक जीवन में मुझे इस प्रकार की कई चिट्ठियां मिली हैं। मेरी रचनाओं से प्रेरित और प्रभावित होकर ही उन्होंने ये चिट्ठियां लिखी थीं।

● **साहित्य के प्रति आप को कब और कैसे लगाव हुआ?**

गांधीजी के प्रेरक और प्रभावशाली नेतृत्व में हमारा राष्ट्र आज़ादी के लिए अंग्रेज़ों के विरुद्ध लड़ रहा था। उस नेता तथा आन्दोलन से मैं प्रेरित हुआ। राष्ट्रप्रेम से ओतप्रेत भारती की रचनाओं ने मेरे मन को उद्‌बुद्ध बनाया। गुलामी, गरीबी और सामाजिक अनीतियों से मैं असन्तुष्ट हो गया। उन दिनों मैं युवक था। आन्तरिक विवशता और प्रेरणा से मैं लिखने लगा। मेरी प्रथम कहानी सन् 1939 में कालेज मैग्जिन में प्रकाशित हुई थी। तब मेरी आयु 17 वर्ष थी। उस रचना से प्राप्त आस्वादन ने और भी लिखने का आत्मविश्वास मेरे मन में जगाया।

● **एक रचनाकार के रूप में आपका मुख्य प्रेरणास्रोत क्या-क्या हैं?**

चारों ओर बिखरे पड़े लोग ही मेरा प्रधान प्रेरणास्रोत है। उसमें मेरे प्यार और नफरत के लोग शामिल हैं। इन लोगों से जुड़ी हुई सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक वास्तविकताएं और वर्तमान समाज की विद्रूपताएं भी उनके अन्तर्गत आती है।

● **आपने कई उपन्यास लिखे हैं। इनमें आपके लिए ज्यादा मनपसन्द उपन्यास कौन सा है?**

मेरे लिए अपना सर्वप्रिय उपन्यास 'एंगे पोगिरोम? (हम किधर जावें') है।

● **उसकी खूबियां क्या-क्या हैं?**

उसमें मैंने छठे दशक के आरंभिक सालों की सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं को उजागर किया है। उसमें यद्यपि एक पढ़ी-लिखी तवायफ की समस्या अवतरित है तो भी हम समाज के वास्तविक तवायफों को सत्ता, उद्योग धंधे और पत्रकारिता के क्षेत्रों में देख सकते हैं। वे धन दौलत के लिए अपनी आतमा को दांव पर रखने वाले हैं। एक मार्मिक प्रश्न के साथ उसकी इतिश्री होती है, गांधी मार्ग की ओर या मार्क्स मार्ग की ओर।

● **समकालीन समस्याएं ही लेखक का कच्चा माल बनें। तब ही साहित्य आस्वादनयोग्य होगा। इतिहास और पुराणोपजीवी इतिवृत्त आज अप्रासंगिक है—आधुनिकों के इस अभिमत से क्या आप सहमत हैं ?**

रचना का आस्वादन किया जाय या नहीं, किसी भी हालत में लेखक को समकालीन समस्याओं पर विचार-विमर्श करना होगा।

● **आपने भी इतिहास से सामग्री उठा ली है। ऐतिहासिक इतिवृत्त को प्रासंगिक बनाने के लिए साहित्यकार को किस बात पर ध्यान बरतना पड़ता है ?**

अधिकांश तौर पर मैंने समकालीन सामाजिक समस्याओं को ही रचनाओं का उपजीव्य बनाया है। हां, तीन उपन्यासों का इतिवृत्त इतिहास से जुड़ा हुआ है। वर्तमान युग की समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में व्याख्या करने की क्षमता हासिल करने पर साहित्यकार ऐतिहासिक-पौराणिक इतिवृत्तों को स्वीकार कर सकता है। कुछ पाठकों के लिए इस प्रकार की कृतियां रोचक नहीं होंगी। साहित्यकार उन पाठकों की बातों पर लापरवाह हो सकता है। मेरा ऐतिहासिक उपन्यास 'वेट्टी तिरुनगर' (विजय नगर) एकता की समस्या को उजागर करता है। कुछ राजनीतिज्ञ एक अलग तमिलनाडु के लिए आन्दोलन चला रहे थे। तभी मैंने इस उपन्यास की रचना की थी। एकता को खतरे में डालने वालों के लिए यह एक चेतावनी है। 'कयल विषि' दूसरा ऐतिहासिक उपन्यास है। लोगों में सत्प्रेरणा और उद्बुद्धता के भावों को जगाने में कला और साहित्य महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। वही इस उपन्यास की केन्द्रीय समस्या है।

● **साहित्य सृजन के लिए इतिवृत्त की जरूरत है। सामाजिक समस्याओं की सजगता भी आवश्यक है। लेकिन ये तत्व काफी नहीं हैं। लेखक के लिए एक सुनियोजित जीवन दर्शन भी आवश्यक है। क्या आप सहमत हैं ? जीवन दर्शन के महत्व पर आपका विचार क्या है ? क्या वह दर्शन हमेशा एक ही रहेगा या बदलता रहेगा ?**

मैं आपसे पूर्णतः सहमत हूं। हर साहित्यकार का अपना एक जीवन दर्शन होता है। वह हमेशा एक रूप नहीं रहेगा। उसमें विकास आयेगा। दूसरे आदमियों के समान साहित्यकार भी बढ़ता रहेगा। अपने सहजीवियों के प्रति स्नेह तथा सहानुभूति साहित्यकार के जीवन-दर्शन के बुनियादी तत्व हैं। यह दर्शन साहित्यकार को अपना एक अलग संसार रचने को सक्षम बनाता है।

● **'एरिमले' (ज्वालामुखी) नामक कहानी में आपने एक वेश्या की डायरी के प्रकाशन की बात उठायी है। उस वेश्या से स्थानीय साहित्यिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों के नेताओं का सांठ-गांठ है। यह कहानी हमारे सांस्कृतिक क्षेत्र की तीखी आलोचना है। क्या इस कहानी का धरातल कल्पना है या यथार्थ ?**

आप उसे कैसे काल्पनिक मान सकते हैं ? जीवन की कठोर वास्तविकताएं लेखक की कल्पना-शक्ति को जगाती हैं। मेरी नायिका यद्यपि एक रंडी है तथापि वह दिल से अच्छी है। लेकिन आजकल राजनीति, प्रशासन, उद्योगधंधे और पत्रकारिता के क्षेत्रों में अनगिनत रंडियां हैं। मुझे अपनी रचनाओं के पात्रों की तलाश में बाहर घूमने फिरने की कतई आवश्यकता नहीं है। मेरे आसपास के समाज में ही वे बिखरे पड़े हैं।

● **'चित्तिरप्पावै' आपका ज्ञानपीठ पुरस्कृत उपन्यास है। इसमें एक आदर्श कलाकार के जीवन के उतार-चढ़ाव के पड़ावों का वर्णन है। इस उपन्यास की रचना प्रेरणा जानने के लिए मैं उत्सुक हूं।**

'चित्तिरप्पावै' उपन्यास का बीज मुझे एक स्त्री के जीवन की एक मार्मिक घटना से ही मिली थी। अपने परिवार के एक परिचित मित्र से उसने कर्ज लिया था और वह बाद में रकम वापस देना चाहती थी। कर्ज वापस देने की बात पर उसने बल दिया तो उसका पति आग बबूला हो गया। पति चिल्ला उठा—"तो जाओ और रहो उसके साथ।' मैं रकम वापस नहीं दे सकता जाओ तुरंत"। उस पति की दृष्टि में धन, धर्मपत्नी से भी बढ़कर है। इस स्फुलिंग ने मेरी भावना को जगाया। मैं कुछ कलाकार और उनके वैयक्तिक जीवन की गतिविधियों का जानकार था। उनके बारे में तथा उनको धोखा देने वाले, लोगों के बारे में और कई बातें जानने के लिए मैं उत्सुक था। साधारण लोगों को धोखा देने वाले, उनकी संपत्ति तथा धन-वैभव को छीननेवाले लोगों को मैंने देखा है। दो साल के अन्तराल में वह उपन्यास पूरा हो गया।

● **कुछ समीक्षक मानते हैं कि 'चित्तिरप्पावै' का पात्र अण्णमले उपन्यासकार का मानसिक प्रतिनिधि है। क्या आप सहमत हैं ? उसमें आत्मसंस्पर्श कहां तक आया है ?**

समीक्षक मत से मैं राजी नहीं हूं। अण्णमले को उपन्यासकार का मानसिक प्रतिनिधि मानना संगत नहीं होगा। उपन्यासकार का आत्मसंस्पर्श उसमें बहुत कम है। अण्णमले उपन्यासकार के ढांचे में ढला गया पात्र नहीं है। कुछ आदर्श कलाकारों से मेरा निकट संपर्क रहा है और उनसे मैंने कई नयी बातें सीख ली थीं।

● **आपका आत्मसंस्पर्श किस उपन्यास में ज्यादा उभर आया ?**

मेरे उपन्यास 'पावैविलक्कु' को आप एक आत्मकथात्मक उपन्यास मान सकते हैं। इसकी रचना मैंने 1957 में की थी। इस उपन्यास में मैंने अपने मानसिक संघर्षों को वाणी दी है। यह एक प्रेम कथा है। अधिकांश पाठकों के मतानुसार यह मेरी शिखर कृति है।

● **भारत एक बहुभाषी राष्ट्र है। यूरोपीय साहित्यकारों की कृतियों से हमारा जितना संपर्क है उसका शतांश भी भार-**

(शेष पृष्ठ 28 पर)

पद्मश्री वैक्कम मुहम्मद बशीर से भेंट

मई बीस 1982 समय ढाई बजे। मैं और अपना एक दोस्त दोनों बेपूर सुलतान के घर पहुंचे। एक बड़ा अहाता। सीढ़ी के पास एक मांकोस्टेयिन पेड़ की छाया में आराम कुरसी पर बैठे थे मलयालम के विख्यात कहानीकार वैक्कम मुहम्मद बशीर। आप के शरीर में बुढ़ापे के चिह्न दिखाई पड़ते थे। बीमारियां भी हैं। यह मुख पर जवानी की उमंग। सामने दो-तीन कुरसियां। एक 'तीपाय' पर कुछ किताबें और समाचारपत्र। मलयालम के एक प्रसिद्ध लेखक डाक्टर यम्० यम्० बशीर भी पास बैठे थे।

"कहां से आते हैं?" बशीर ने पूछा।

"बड़गरा से"

"नाम ?"

"बालकृष्णन"

"क्या बात है ?"

"मैंने आपकी" पावप्पेट्टवरूटे वेश्या (गरीबों की वेश्या) नामक किताब का हिन्दी में अनुवाद किया है। उसे प्रकाशन करने की अनुमति देने का अनुरोध है।"

"हिन्दी भाषा के विकास एवं प्रचार के लिए सरकार बहुत रुपये खर्च करती है। पर हिन्दी का प्रचार ईमानदारी के साथ जो लेखक करते हैं, उन्हें काफी मदद नहीं मिलती। उन्हें मिलती है रूखी-सूखी आर्थिक सहायता। सुनाई पड़ता है कि इन रुपयों के अधिकांश भाग हिन्दी के प्रचार के लिए नियुक्त सरकारी अफसरों के हाथ में चले जाते हैं। कौन जाने सच्चाई क्या है? वे शहर-शहर में ठाट-बाट से भ्रमण करते हैं, बड़े-बड़े होटलों में ठहरते हैं और भारी रकम टी० ए० वसूल करते अगर बात सच है तो पुस्तक का प्रकाशन करते समय थोड़ा सावधानी रखनी चाहिए।" बशीर का उपदेश यह था।

"मैं आपसे कुछ बातों की चर्चा करना चाहता हूं।" मैंने कहा।

"ओ, बात वही है, तो पूछिये।"

"आप को भोजन करना है न?" पास बैठे यम्० यम्० बशीर ने पूछा।

"परवाह नहीं; भोजन बाद में।"

"हमें जल्दबाजी नहीं। आप भोजन करके आइए।" हमने कहा।

"भोजन की बात क्या? मेरे दुपहर का भोजन कभी-कभी शाम को पांच बजे होता है। आप लोग सवाल पूछें।" बशीर ने कहा।

तब मुझे बशीर की कहानी "जन्मदिन" याद आई। भूख के मारे तड़पकर अपने जन्मदिन में दोस्त का भोजन चुराकर खाने वाले कहानीकार का चित्रण! जीवन की यातनाओं से परिचित बशीर को भोजन कुछ नहीं। खाली पेट बैठकर कागज और स्याही उधार लेकर भी आप कहानी लिखने के लिए तैयार हुए थे। ऐसे बशीर को समय पर भोजन कैसे मुख्य हो जाता है?

बशीर उमंग के साथ उस आरामकुरसी पर बैठकर मेरे सवालों का जवाब देने लगे। आप के भाषण की शैली भी कहानी की शैली से मिलती-जुलती है। सरस और व्यंग्यपूर्ण। आपके साथ बातचीत करते समय हम सब कुछ भूल जाएंगे। आपकी वाणी का आकर्षण उतना प्रभावोत्पादक था।

- पद्मश्री की उपाधि मिलने की बात सुनकर आपका क्या प्रतिकरण था?

"मुझे कई उपाधियां मिली हैं। चार ताम्रपत्र हैं। सुवर्ण मुद्राएं भी। उपाधियां मुझे दी जाती हैं। उसमें खुशी है।

राष्ट्रपति से पत्र मिला मुझे पद्मश्री उपाधि दी गई है। उसे स्वीकार करने दिल्ली में जाने का निमंत्रण-पत्र भी मिला।

□ तत्तोत्त बालकृष्णन

चार व्यक्तियों को हवाई जहाज में सैर करने का इन्तजाम, दिल्ली में ठहरने के लिए 'थ्री स्टार होटल" में आयोजन। ठहरने के प्रत्येक दिन 150 रुपये भत्ता। ये सुविधाएं मुझे मिलेंगी। लेकिन मैंने जवाब दिया कि मेरा स्वास्थ्य बिगड़ गया हैं, इसलिए दिल्ली तक लम्बी यात्रा नहीं कर सकता। एक जमाना था कि मैं कई सालों तक दिल्ली में ठहरा था। वहां छोटे-से-छोटे होटलों से लेकर बड़े-से-बड़े "फाइव स्टार होटलों" तक मेरा परिचय था। इन सबों में ठहरा भी था। फिर दिल्ली में "थ्री स्टार होटल में ठहरने का इन्तजाम मेरे लिए गौरव की बात कैसे? आखिर उपाधि-पत्र मेरे नाम भेजा गया। एक उपाधि-पत्र, जिसमें लिखा था "पद्मश्री वैक्कम मुहम्मद बशीर", मैडल आदि एक हजार रुपये का 'इनबूड' करके भेजा गया। मिलने पर मुझे लगा कि यह 'फ्रेम' करके रखना चाहिए। फ्रेमिंग करने की बात आई तो मालूम हुआ कि उसके लिए साठ से अधिक रुपये चाहिए। यह रकम राष्ट्रपति से मिलती है क्या? यही है मेरी पद्मश्री की कहानी।

● अपनी कहानियों में आप किस कहानी को सबसे अधिक पसंद करते हैं ?

"ऐसी कोई कहानी नहीं जो मैं विशेष रूप से पसंद करता हूं। मैं अपनी सभी कहानियां पसन्द करता हूं। प्रत्येक कहानी को लिखते समय मुझे ऐसा लगता है कि वह बड़ी मनोहर है। अपने बच्चों में किसी एक बच्चे से मुझे अधिक प्यार नहीं। सबको समान रूप से प्यार करता हूं।

● कहानी साहित्य की नयी प्रवृत्तियों के बारे में आपका क्या मत है ?

"साहित्य में हमेशा नयी प्रवृत्तियां होंगी। प्राचीन रूढ़ि वाले नयी प्रवृत्तियों को पसन्द नहीं करेंगे। उसकी परवाह न करें। जब तकषी, केशवदेव, एस० के० पोट्टकाट (मलयालम् के प्रसिद्ध कहानीकार) और मैं पहले कहानियां लिखने लगे तब हमारी कहानियों पर बड़ी टीकाटिप्पणियां होती थीं। आज मुकुन्दन, काक्कानाटन् और ओ० वि० विजयन् (मलयालम् के आधुनिक कहानीकार) की कहानियों पर भी टीका-टिप्पणियां चलती हैं न ? समय आयेगा कि इन नयी प्रवृत्तियों को पाठक पसन्द करेंगे।"

● प्रतीकात्मक कहानियों के बारे में आपकी राय क्या है ?

"सब की कहानियां आकृष्ट करती हैं। मैं यह नहीं कह सकता कि अमुक कहानीकार की कहानी पसन्द करता हूं। मैं सबकी कहानियां पढ़ता हूं। सब कहानीकार मेरे दोस्त हैं।"

● आपको आत्मकथा के रूप में कहानियां लिखने की कोई विशेष प्रेरणा मिली है ?

"कोई विशेष प्रेरणा नहीं। हम अपने बारे में ही अधिकार से कह सकते हैं न ? मैंने ऐसा किया।"

● आपकी कहानियों में जानवरों का चित्रण पाया जाता है। कारण क्या है ?

"मैं जानवरों से बहुत परिचित हूं। जब मैंने यह अहाता खरीदा तो यहां करैत, चमगीदड़, सियार, बिच्छू जैसे कई जानवर थे। धीरे-धीरे उन सबसे मेरा परिचय हुआ तो वे विद्रोही नहीं बने।"

● आपकी कहानियों में व्यंग्य तथा दिल्लगी है। इसका चित्रण करते समय आपका भाव क्या है ?

"मैं सच्चा मुसलमान हूं। करुणा की मूर्ति ईश्वर को मैं स्रष्ट समझता हूं। उस स्रष्टा को मैं एक दिल्लगी उड़ाने वाला जादूगर मानता हूं। उनके जादू का बयान कुरान और हिन्दुओं के धार्मिक ग्रन्थों में विस्तृत रूप से किया गया है। जिस तरह सृष्टा अपनी सृष्टि में जादू के व्यंग्य भरते हैं उसी तरह मैं भी अपनी विनीत व छोटी सृष्टि को व्यंग्य से भरता हूं।"

● क्या आप अंग्रेजी उपन्यास पढ़ा करते हैं ? आपकी कहानियों में उनका प्रभाव हुआ करता है ?

"मैंने दो बार बुकस्टाल चलाया था। बड़ा बुकस्टाल। उनमें अंग्रेज़ी किताबें अधिक होती थीं। मूल्यवान किताबों की दो कापियां मैं खरीदता। एक बुकस्टाल में रखता और दूसरी अपने कमरे में। उस तरह मैं कई अंग्रेजी उपन्यास, आलोचना के ग्रंथ, यात्रा संस्करण आदि पढ़ सका। किसी ग्रन्थकाल की सभी किताबें पढ़ने की आदत नहीं। कुछ किताबें पढ़ता। उनमें "रोमयिन रोलण्ट" का "जीन क्रिस्टोफ" विशेष उल्लेखनीय है। उसका एक-एक पन्ना पढ़ते समय मेरे मन में कई भावनायें उमड़कर आयीं। बीस साल से मैं यह किताबें पढ़ता आया हूं। अभी तक एक सौ पन्ने से अधिक नहीं पढ़ सका। ये सब पुरानी बातें हैं।"

● आप को कुछ लोग अन्तर्मुख कहते हैं; वह कहां तक ठीक है ?

"मैं केवल अन्तर्मुख नहीं। "शब्दङल" (आवाज) नामक मेरी कहानी पढ़ो। उसमें मेरी अन्तर्मुखता की क्या बात है ? आलोचक क्या नहीं कह सकते ?"

● अपने कथापात्रों में किस पात्र को आप सबसे अधिक पसन्द करते हैं ?

"मेरे कई दोस्त हैं। मुझे सबके प्रति प्रेम भी है। अमुक व्यक्ति से विशेष प्रकार की मुहब्बत नहीं। उसी तरह बता नहीं सकता कि अमुक कथा पात्र मेरी आंखों का तारा है।"

● प्रत्येक कहानी की सृष्टि करते समय आरंभ, मध्य और अंत में आपका क्या मनोभाव है ?

"कोई विशेष प्रकार का भाव नहीं। प्रत्येक कहानी मेरे मन में एक आशय के रूप में पैदा होती है। कल्पना में यह भी निश्चित होगा कि इस आशय को कैसे प्रस्तुत करना चाहिए उस आशय का प्रस्तुतीकरण कहानी का रूप धारण करता है। कभी-कभी मेरी कहानियां पढ़कर पाठक यह समझ नहीं सकते कि वह कहानी किस आशय का प्रतिनिधित्व करती है।"

● मन में जो आशय पैदा होता है, लिखते समय क्या वह दूसरा रूप धारण कर लेता है ?

"कभी नहीं। लिखते समय कहानी कभी नये मोड़ में नहीं आती। कहानी पूर्ण रूप से मेरे मन में होगी। लिख चुकने के बाद कभी-कभी थोड़ा-थोड़ा परिवर्तन भी करना पड़ता है।

● मलयालम् की आजकल की कहानियों और उपन्यासों के बारे में आपकी राय क्या है ?

"मैं अब अधिक नहीं पढ़ता। दुनिया में भले और बुरे आदमी होते हैं। उसी तरह अच्छी और बुरी किताबें भी होती हैं।"

● आजकल आप नयी कहानियां या उपन्यास लिखा करते हैं ?

"लिखा करता हूं। अब पारिवारिक जीवन है। दोस्त भी हैं। अतः अकेले बैठकर लिखने का समय नहीं मिलता।"

● **केरल की राष्ट्रीय परिस्थिति के बारे में आपका मत क्या है ?**

"अच्छा सवाल है। आज के अखबार में मैंने अपना मत प्रकट किया है।" (केरल में चुनाव जिस दिन चल रहा था उसके दूसरे दिन हम बशीर से मिलने गये थे।)

अखबार दिखाकर आपने कहा, "यह लिखो।"

"जो कोई राष्ट्रीय दल शासन से आये, सोष्यलिसम् है, फिर क्यों अपना वोट दूं ?

हम कहां पहुंचे ? यातनाओं के त्रिशूल पर चलकर जो आजादी प्राप्त हुई क्या यह, वह आजादी है ?....जब ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध बहुत कम युद्ध करते थे, तब उस ब्रिटिश सरकार की लकड़ी पर नाचकर उनके बन्दी और चारण बनकर रहने वाले लोग आज शासन करते हैं; समय का जादू।"

● **समाज के प्रति आपको क्या सन्देश देना है ?**

"भूमि के पैदा होते करोड़ों साल बीत चुके। उसके बाद आदमी पैदा हुए। आदमियों में कई पंडित और दार्शनिक होते थे। सुकरात, कन्फ्यूषियस्, मोसस, ईसा मसीहा, हजरत मुहम्मद, श्रीकृष्ण, गुरुनानक आदि। उन सब ने दुनियां को कई उपदेश दिये थे। उन उपदेशों को पढ़कर अपना लेना काफी है।"

बातचीत के बीच में बषीर ने अपने जीवन के भूतकाल का दिग्दर्शन भी किया। बशीर भारत—भर घूमे थे। केवल लंगोटी पहनकर, दाढ़ी बढ़ाते, हाथ में कमण्डल धारण कर, सन्यासी के वेष में बशीर ने कई स्थानों की यात्रा की थी। उस समय हाथ में पैसा नहीं था; भूखों मर रहा था। एक बार घूमते-घूमते प्यास इतनी बड़ी हो गयी कि बदबू से भरा गंदा पानी सारे संसार को मन में केन्द्रित करके "अहंब्रह्मास्मि" (अनलहक), कहकर पीना पड़ा।

आपकी भूतकाल की घटनाओं से भरी कहानी सुनकर हमें आश्चर्य हुआ। यह साहित्यकार जीवन के सभी तरह के पहलुओं से परिचित थे। ये सब सुनकर मुझे ऐसा लगा कि क्या इस आदमी की वेदना ने ही वस्तुतः इनकी कहानियों में दिल्लगी और व्यंग्य का रूप धारण कर लिया है न ?

आजकल बशीर कालिकट के पास बेपूर में सपरिवार सुख से रहते हैं। एक मजेदार घटना भी आपने हमारे सामने प्रस्तुत की।

चुनाव के समय प्रत्येक राष्ट्रीय दल चुनाव का प्रचार करते आप के घर पहुंचा। उनमें एक दल ने चिन्ह दिखाकर पूछा, "आपको कौन सा चिह्न अच्छा लगता है ?" साहित्यकार बशीर ने कहा कि मुझे कमल का फूल मनोहर लगता है। कमल बी० जे०पी० का चिह्न है। इसलिए दूसरे दिन बाजार में लोग कहने लगे कि वैक्कम मुहम्मद बशीर बी० जे० पी० के लिए वोट का प्रचार करते हैं।

"चुनाव का प्रचार इस तरह होता है।" बषीर ने कहा।

इस अनुभवी कहानीकार से विदा लेकर लौटते समय मेरे मन में उस महाशय के यातनापूर्ण अनुभव था। आज आप के मन की निराशा की चिन्ता उमड़ आ रही थी। कई महान व्यक्तियों के जीवन को कुर्बान करके जो आजादी हमें प्राप्त हुई थी आज उसकी दुर्दशा पर बशीर की निराशा आप की बातचीत में प्रकट थी। पर आपको किसी से कोई शिकायत भी नहीं।

—डाकखाना : मयान्नुर, बदगारा
कालीकट-673107 केरल

अखिलन से बातचीत

(पृष्ठ 25 का शेषांश)

तीय साहित्यकारों की कृतियों से नहीं है। भावात्मक एकता आज एक मृगतृष्णा सी है। भारत की प्रान्तीय भाषा की कृतियों को पारस्परिक अनुवाद आज की सख्त जरूरत है। इस दिशा में आपके मूल्यवान सुझाव क्या-क्या हैं ?

आजादी हासिल होकर साढ़े तीन दशक बीत गये। सारी भारतीय भाषाओं की प्रतिनिधि कृतियों के अनुवाद के लिए अब तक कोई योजनाबद्ध कार्यक्रम नहीं हुआ है। हर भाषा में अनुवाद को प्रमुख स्थान देने वाली एक मासिक पत्रिका प्रकाशित होनी है। साहित्य अकादमी के कार्यक्रम बिल्कुल अपर्याप्त हैं। यहां अनुवादकों को अच्छा प्रशिक्षण नहीं दिया जाता। हिन्दी को सही माने में राष्ट्रभाषा की पदवी मिलनी है तो हिन्दी भाषियों का कम से कम एक दल अन्य भारतीय भाषाएं पढ़ने की कोशिश करें। इस प्रकार वे हिन्दीतर भारतीय भाषाओं की प्रमुख कृतियों का हिन्दी अनुवाद तैयार कर सकेंगे। इस प्रकार की योजनाओं को सरकार का प्रोत्साहन भी मिलना आवश्यक है। अन्य भारतीय भाषाओं की प्रमुख कृतियों से कोसों दूर रहकर हिन्दी कैसे भारत की राष्ट्रभाषा बन सकेगी ? संसार की प्रमुख भाषाओं की कृतियों को चुनकर उनके अनुवाद तैयार करने से ही अंग्रेज़ी की साहित्यिक समृद्धि बढ़ गयी है। विश्व भाषा के क्षेत्र के लिए वह सर्वथा समर्थ है। एक उद्देश्यपूर्ण राष्ट्र व्यापक अनुवाद अभियान को रूप देने पर कम से कम पढ़े लिखे लोगों तक भावात्मक एकता का सन्देश पहुंचेगा। सोवियत संघ से हम इस दिशा में कुछ सबक सीख सकेंगे। वहां 75 भाषाओं में हम समृद्ध साहित्य देख सकेंगे।

लेक्चरर, हिंदी विभाग, गवर्मेंट आर्टस् एण्ड साइंस कालेज,
कालीकट-673018

3000 Kn-154-

कहानी

विश्वामित्र का आपद् धर्म

–सीताराम खोड़ावाल

त्रेता ने सिसक-सिसक कर दम तोड़ दिया था। कभी वैभव और गौरव जिसके आगे हाथ बांधे नतमस्तक खड़े रहते थे, कुबेर जिसको चंवर डुलाता था और वरुण जिसके पांव पखारता था, उस त्रेता का ऐसा दुखद अंत होगा किसी को कल्पना भी न थी। वृद्धावस्था में श्रीहीन त्रेता ने विपन्नता व्यथा और दारिद्रय की बेड़ियों में जकड़े दम तोड़ा।

जब द्वापर का युग आया तो उसे विरासत में मिला अकाल, भयंकर दुर्भिक्ष। चिथड़ों से लिपटा कंपित पैरों से गिरता-पड़ता द्वापर अपने दुर्भाग्य को कोसता लम्बी सांसे छोड़ता वीरान, उजाड़ और सूनी गलियों में भटक रहा था। जगह-जगह रुक कर सूखी हड्डियों की ठठरियों को कातर दृष्टि से निहार वह दो क्षण गर्दन हिलाता, मानो कह रहा हो "नहीं-नहीं ऐसा नहीं हो सकता" और कलेजा थाम कर बैठ जाता। भला अपने आप को कहां तक छला जा सकता है।

बस्ती से निकलकर वह जंगल में आया और आकाश की ओर निहारा। जैसे मटियाला भाड़ आग की लपटें उगल रहा हो। भांय-भांय करती झुलसती तेज गर्म हवा मुंह पर थपेड़े से मार रही थी, शीतल सुखद छाया देने वाले वृक्ष सूख कर ठूंठ बन चुके थे, और उनकी कांपती टहनियां आकाश में बाहें उठा-उठा कर मानो प्रकृति से दया की भीख मांग रही हों, सूखी पीली पत्तियों और घास के तिनकों को उड़ते देख पहले तो उसे भ्रम हुआ कि मक्खियां होगीं पर हाय दुर्भाग्य काल उन्हें भी खा गया था। उसने देखा आक के निर्लज्ज पौधों के पत्ते भी जो ग्रीष्म में पनपते हैं, झुलस कर काले कागज हो गए थे और बत्तियों की शक्ल में गिरकर रेंग रहे थे।

सामने एक ताल था जिसमें कभी निर्मल मीठा पानी हिलोरे लेता था। अब सूख गया था और गड्ढा ऐसा लगता था मानों धरती की रूखी काया में कोढ़ हो गया हो, तलहटी की पपड़ी जगह-जगह से तिड़क गयी थी जैसे खुश्की से चमड़ी फट गयी हो, जिन नालियों से खेतों की प्यास बुझाने वाला पानी बहता था वे किसी गरीब की ऐड़ियों में खुली गहरी बिवाइयों सी लगती थीं।

पशुओं की हड्डियों के ढांचे, छोटे-छोटे कंकाल घृणा के मारे मुंह भींचे द्वापर से कह रहे थे "क्यों आये बर्बादी और तबाही लेकर ? जाओ और अपना काला मुंह लेकर कहीं डूब मरो" पर डूबने की तो क्या कलंक का टीका लगाने तक के लिये पानी नहीं था।

मृत्यु और विनाश के रौरव से भयभीत होकर द्वापर पागलों की तरह दौड़ा, वियाबान जंगलों, नंगे पर्वतों और विधवा की मांग सी रीती नदियों को फांदता वह एक गांव के निकट पहुंचा, जहां जीवन की हल्की सी किरण झलक रही थी। दूर किसी झोंपड़ी से प्रकाश की रेखा फूट रही थी। यहां के बड़े वृक्षों पर पत्ते थे। बावड़ियों में कीचड़ भी थी जिस में कहीं-कहीं जल तक झिलमिला रहा था।

बिल्ली की तरह कदम दबा-दबा कर रखता हुआ द्वापर गांव की तरफ बढ़ा। गांव के बाहर यह झोपड़ियां चांडालों की थी। अत्यंज, जिनकी छाया से भी बचकर चला जाता, जिन्हें मुर्दा मवेशियों का मांस और गांव वालों का फेंका जूठन ही खाने को मिलता था, या मक्का, कोदो जैसा निकृष्ट अनाज ही जो घड़ियल में भून कर खा सकते थे, जो शरीर पर केवल बहुत जरूरी अंगों को ढकने के लिए मात्र उतरन और चिथड़े ही धारण कर सकते थे, पशुओं के पीने के योग्य पानी पी सकते थे, और मरे ढोर उठाने तथा ऐसे ही अन्य कामों के अलावा अन्य अवसरों पर गांव की सीमा में प्रविष्ट नहीं हो सकते थे। इनमें कोई पशु पक्षी पकड़ने का काम करता था तो कोई टोकरियां या छाज बनाता था, कुछ खेतों में पशुओं की तरह जुत कर खून पसीना बहाने के बाद उजरत में पाते थे जूठन और उतरन।

फूंस की एक छोटी सी झोपड़ी के पिछवाड़े द्वापर दीवार से चिपक कर खड़ा हो गया है। दीवार के आले से झांककर उसने देखा यहां जीवन के स्पष्ट चिह्न हैं। आधी रात। चांद की मटमैली रोशनी। झोपड़ी में फैली नीरवता को भंग कर रहे थे रह रह कर उठने वाले खर्राटे। एक दीवार से दूसरी दीवार तक एक रस्सी बंधी थी। उस रस्सी पर पशुओं की आंते लटक रही थी जिन पर ऊपर से नीचे तक मक्खियां पंक्तियां बांधे सो रही थीं। एक कोने में दो तीन घड़े एक दूसरे के ऊपर रखे थे, जमीन पर धान की पुआल बिछी थी जिस पर श्यामवर्ण का एक लम्बा तगड़ा व्यक्ति सो रहा था, जिसके तन पर एक मृग-चर्म, गले में कौड़ियों की माला और हाथों में लोहे के कड़े थे। उसके सिर के रूखे उलझे बालों के झूतरे जटा बन गए थे और मूछों के बाल धूल धुवें से कत्थई रंग के पड़ गए थे। उसकी नाक में एक छल्ला था जिसमें कौड़ी बिंधी थी। सांस लेने पर उसका पेट धोंकनी की तरह हिलता और खर्राटों की धुन बज उठती। उसके पास एक स्त्री सो रही थी और तीन बच्चे लुढ़के पड़े थे।

द्वापर को झोपड़ी से द्वार पर कोई परछाई सी हिलती दिखाई दी। जटा जूट और रुद्राक्ष भी चांदनी में उसने पहचान लिए। आकृति सुदृढ़ व्यक्ति की थी जिसने केवल अधोवस्त्र

पहना था। मृग चर्म और दण्ड बगल में दबा रखे थे। दूसरे हाथ में कमण्डल था।

आगंतुक ने इधर-उधर देखा और तेजी से झोपड़ी में घुस गया। मृगछाला और दण्ड कमण्डल आहिस्ता से जमीन पर रखा और सारी झोपड़ी में दृष्टि घुमाई! यह कोई ऋषि था जो बहुत थका तथा भूख से व्याकुल नजर आ रहा था। उसने घड़ों को टटोला और एक घड़े में मनचीती चीज पा ली। दोनों हाथों से पकड़ कर उसने इस वस्तु को जल्दी-जल्दी खाना शुरू कर दिया। तभी गन्ध पाकर कोई कुत्ता उधर दौड़ पड़ा और जोर-जोर से भौंकने लगा। ऋषि हड़बड़ा कर खड़ा हो गया और भागने का प्रयत्न करने लगा। इसी बीच झोपड़ी का मालिक चांडाल भी जग उठा। उसने एक झपट्टे में ही ऋषि को दबोच लिया पर क्षण भर में ही वह व्यक्ति ऋषि से दूर हट गया मानों उसका हाथ आग पर पड़ गया हो।

वह घुटनों के बल जमीन पर लेट गया और ग्लानि के ताप से तपता सा बोला—"मुझ नीच नराधम का अपराध क्षमा हो नाथ। अनजाने में ही आप का स्पर्श हो गया। जानबूझ कर ऐसा पाप मैं कभी नहीं कर सकता था।'

ऋषिने केवल इतना कहा "तथास्तु।"

इसके बाद ऋषि ने जमीन पर गिरी वस्तु फिर उठाकर उसे चबाना शुरू कर दिया। अब चांडाल एक बार फिर चौंका पर वह जल्दी ही वस्तुस्थिति को जान गया। जमीन से उठकर ऋषि के पीछे हाथ जोड़कर खड़ा हो गया जिससे ऋषि की दृष्टि और अधिक उसके अपवित्र तन पर न पड़े। इसके बाद चांडाल विनीत स्वर में बोला—"आप कोई ऋषि मुनि लगते हैं, नृप भी आपकी पूजा करते हैं। आप मेरी झोपड़ी में आये, मेरे सात जन्म सफल हो गये। मैंने आपका स्पर्श कर लिया। मुझे पता नहीं इससे मुझे पाप मिलेगा या पुण्य, क्योंकि बड़े लोगों को छूकर अपवित्र करना पाप है और साक्षात किसी ऋषि के दर्शन सबसे बड़ा पुण्य। पर महाराज आपने एक अनर्थ कर दिया। मेरे ऊपर इतना बड़ा पाप चढ़ा दिया कि सौ सौ जन्म लेकर भी मैं इससे मुक्ति नहीं पा सकता।"

द्वापर के हृदयांगन में जिज्ञासा के मृग कुलाचे भरने लगे। उसने उचक कर अपनी गर्दन आले के और भीतर डाल दी। अब दृश्य और स्पष्ट हो गया, संवाद और सुगम्य हो गए। द्वापर की कुंठित विषाद अनुभूतियों के तप्त मरुस्थल में मानों उत्साह के मेघ मंडराने लगे, श्रीस पुष्पों की भीनी-भीनी सुगंध का झोंका सा आया जिसने अवसाद ताप की भीषणता को विस्तृत सा करा दिया। भावावेश में उसके नयन सरोवर छल-छला उठे, सिकुड़े अधर विस्तीर्ण हो गए, तनो भवों से मानों अथाह भार उतर गया—कितना पुण्यात्मा, कितना विनीत है, चाण्डाल कहलाने वाला यह प्राणी जो अपने घर में चोर को पकड़ कर भी उसके प्रति आदर से भूमि में गड़ा जा रहा है।

चाण्डाल जमीन से उठकर ऋषि के एक पग और समीप आया और कम्पित स्वर में बोला—"जिस पदार्थ को महात्मा खा रहे हैं वह अखाद्य है। आप कोई ऋषि हैं—प्राणियों में श्रेष्ठ। मुझ अकिंचन की सम्पत्ति केवल श्रम है किंतु फिर भी यदि मेरी किसी वस्तु पर आपका मन आए तो शास्त्रीय विधान के अनुसार आप उसे जब चाहें प्राप्त कर सकते हैं। यहां तक कि मेरे परिवार का प्रत्येक सदस्य आपके संकेत मात्र से आपकी

सम्पत्ति बन सकता है। किंतु इसका निर्णय करने में शास्त्र भी मौन हैं कि क्या आप मेरा जूठन खा सकते हैं? जूठन खाना तो मेरा धर्म है, जो किन्हीं पूर्व कर्मों का फल है। वैसे यह जूठन भी निकृष्टतम है। मेरी जिह्वा थरथरा रही है कैसे बताऊं स्वामी, यह तो मृत श्वान का मांस है जो केवल मेरी श्रेणी के लिए खाद्य है आप तो......"

ऋषि ने निर्विकार भाव से मांस समाप्त किया और चाण्डाल की ओर मुड़ कर बोला—"एक चुल्लू पानी मिलेगा?"

चाण्डाल चार पग पीछे हट गया और हाथ जोड़कर बोला—"दुर्भिक्ष को इस विपदा में जल कहां प्रभु, कीचड़ निचोड़ कर पी लेता हूं, आज्ञा हो तो उपस्थित करूं?"

ऋषि ने संक्षिप्त सा उत्तर दिया—'हां'

चाण्डाल के पैरों में मानों पंख लग गए हों। एक ऋषि की सेवा का सुअवसर पाकर वह तड़ित-गति से बावड़ी की ओर दौड़ा और एक मिट्टी के पात्र में थोड़ी फचफची कीचड़ ले

आया। ऋषि ने दोनों हाथों और ओठों को रगड़ कर साफ किया और चलने को उद्यत हुआ किंतु चाण्डाल उसके मार्ग में घुटनों के बल बैठ गया और मस्तक भूमि पर रगड़ता हुआ अनुनय करने लगा—"प्रभुवर। मेरा यह जन्म तो गया। अगले जन्मों के दारूण दुख से तो मुझे मुक्ति प्रदान कीजिए। कृपा कर मेरी इस शंका का निवारण कर दें कि एक श्रेष्ठ और कुलीन पुरुष के द्वारा निकृष्ट और मेरा जूठा पदार्थ भक्षण करने से मुझे पाप तो नहीं लगेगा?"

द्वापर की आंखों से आंसुओं की झड़ी लग गई। यह प्राणी है जिसका सम्पूर्ण समाज न केवल निर्ममता और निर्लज्जता से शोषण और तिरस्कार करता है वरन दंभ मद में अंधा होकर इसको निर्दयता से प्रताड़ित भी करता है, इसमें पाप पुण्य के प्रति कितनी अथाह चिंता है, मर्यादाओं का कितना अटूट अनुयायी है।

चाण्डाल के आग्रह की प्रचण्डता से ऋषि के हृदय की कठोरता विगलित हो उठी। वह गुरु गंभीर वाणी में बोला मानो स्वर्णाभरण में मणियां जड़ रहा हो—"श्रद्धालु प्राणी, तेरा असीमित आग्रह जान कर मैं तुझे बताता हूं। तेरा साक्षात्कार क्षत्रीय कुल में जन्में किंतु अतुलनीय तपोबल से ऋषित्व पाने वाले ऐसे युग पुरुष से है जिसने निर्जीव परम्पराओं की चट्टानों को भुने सुहागे की भांति मसल कर चूर्ण कर दिया, ब्रह्मा की सत्ता की चुनौति दी है और नवसृष्टि की रचना की है, जिसने इन्द्र के सिंहासन को भी डोलायमान कर दिया।"

विश्वामित्र ऋषि का परिचय पा चाण्डाल दण्डवत मुद्रा में लम्बायमान हो गया और बार-बार धरती पर अपनी नासिका को रगड़ने लगा। सात बार ऐसा करने के बाद वह नेत्र मूंद कर घुटनों के बल बैठ गया दोनों हाथ जोड़कर ऋषि की वाणी का अमृतपान करने लगा। उसके प्राण कानों में केन्द्रित हो गए।

सहसा ऋषि का वरद हस्त उठा और उसने कहा—"मुमुक्षित ऋषि को काल ग्रास बनने से बचाने का पुण्य लाभ तुझे प्राप्त होगा चाण्डाल पुत्र। प्रश्न है मेरे अखाद्य भक्षण का वह मेरा आपद्धर्म था। मृत्यु को साक्षात पा मैंने स्वविवेक से कार्य किया है। पाप पुण्य का निर्धारण समायानुकूल होना ही युक्ति संगत है। परम्पराएं जड़ नहीं गतिशील होनी चाहिए।"

फिर सहसा नीरवता व्याप्त हो गई और जब चाण्डाल ने आंखें खोली तो ऋषि प्रस्थान कर चुका था।

झोपड़ी के पीछे खड़े द्वापर की भी अब तन्द्रा टूटी और उसके मन को भी अनेक शंकाओं के झंझावातों ने झकझोर डाला। उसके थकित पांवों में भी गति आ गई और वह लपक कर गाधिकुलभूषण विश्वामित्र के समक्ष आ खड़ा हुआ। विनीत भाव से वसुधाविमुख हो वह बोला—"ऋषियों में श्रेष्ठ। तपस्वी शिरोमणिकालजयी विश्वामित्र!!! मैं इस युग का स्वामी द्वापर हूं। त्रेता के अवसान पर मेरा उदय हुआ है, मैं आपको सविनय प्रणाम करता हूं।"

"आयुष्मान हो कीर्तिमान हो।" ऋषि ने आशीर्वचन कहे और द्वापर को सांगोपांग निहारा।

द्वापर ने अपनी जिज्ञासाओं को शब्दानुबद्ध किया—"कौशिक प्रवर। आप बीते युग की महान विभूति हैं। आपका ज्ञानोदधि अथाह और अपार है। आपकी विचारशक्ति निरपेक्ष और निर्बन्ध है। मैंने आपका और चाण्डाल का संवाद सुना है। आप मेरी इस शंका का मूलोच्छदन करें कि आपद धर्म क्या है। कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय कौन करता है?"

ऋषि के मुखमण्डल पर और गम्भीरता व्याप्त हो गई। उसने द्वापर की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा—"युगपति, यह शुभ ही हुआ कि तुम से भेंट हो गई। तुम्हारी शंका आपद धर्म पर है। मैं इसकी व्याख्या इस प्रकार करता हूं। मानव जीवन के तीन मुख्य तत्व हैं—देह, धर्म और आत्मा। देह स्थूल है, धर्म और आत्मा सूक्ष्म हैं। इन में सूक्ष्म का स्थान उच्च है। किंतु सूक्ष्म में भी आत्मा श्रेष्ठ है। इस प्रकार आत्मा सर्वोपरि है। किंतु यह भी तथ्य है कि स्थूल की सत्ता के बिना सूक्ष्म की सत्ता असम्भव है, क्योंकि स्थूल ही सूक्ष्म का धारक है।

अतएव धारक के अभाव में धारित की सत्ता अर्थहीन है। यदि मैं धारित तत्व धर्म के आदेश पर धारक स्थूल तत्व देह की उपेक्षा करता तो मैं काल ग्रास बन जाता। तब धर्म को वहन कौन करता? आत्मा को धारण कौन करता? ऐसी अवस्था में आत्मा ने निर्देश दिया कि धर्म और आत्मा की रक्षा के लिए किसी भी उपाय से देह की रक्षा करो। मुझे ज्ञात था कि चाण्डाल के भाण्ड में मृत श्वान का उच्छिष्ट मांस है किन्तु मेरे समक्ष प्राणरक्षा हेतु अन्य विकल्प नहीं था। अतएव वह मेरा आपद्धर्म था कि मैं प्राणरक्षा करता। इस कर्तव्याकर्तव्य की स्थिति में आत्मविवेक ही निर्णय देता है।

आप एक युग स्वामी हैं। आपको यह जानना आवश्यक है कि धर्म कोई जड़ शिला नहीं हैं, सद्धर्म एक प्रकाशमान ज्योतिपुंज हैं जो विश्व कल्याण मार्ग को आलोकित करता है। धर्म में समयानुकूल संशोधनों की क्षमता हो, अन्यथा वह हमारे लिए भार बन जाता है।"

चलते-चलते ऋषि ने फिर कहा—"यदि हम धर्म को रूढ़ियों की सड़न से दूषित कर देते हैं तो वह अमृत के स्थान पर विष बन जाता है। तब प्रकृति अपना कार्य करती है। उदाहरण समक्ष है। त्रेता में जन भार से जब पृथ्वी पर प्रकृति-प्राणी संतुलन बिगड़ गया तो उसके निवारणार्थ ही यह भयंकर दुर्भिक्ष प्रकट हुआ है।

अतएव इस शाश्वत सत्य को सदा स्मरण रखें कि कोई भी धर्म, कोई भी मान्यता अपरिवर्तनीय नहीं।

ऋषि प्रवचन समाप्त कर विलीन भी हो गये और द्वापर मंत्रमुग्ध सा इस ध्रुव-सत्यकी मीमांसा करता खड़ा रह गया।

—सीताराम खोड़ावाल, कापीराइटर (हिन्दी)

Home Address

3000
Rs. 150/-

योगीराज आचार्य भणसाली जी

क्र० गो० वानखड़े गुरुजी

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का नाम हम केवल भारतवासी ही नहीं बल्कि विश्व के सभी लोग जानते हैं। भारत माता को पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त कराने में महात्मा गांधी का सबसे बड़ा श्रेय है। सन् 1942 में पूज्य महात्मा गांधी ने स्वतंत्रता की जो आखिरी लड़ाई लड़ी उससे आगे चलकर भारत माता अंग्रेजी दासता से सदा के लिए मुक्त हुई।

स्वतंत्रता की इस लड़ाई में महात्मा गांधी का असंख्य लोगों ने साथ दिया। महात्मा गांधी के इन निकट सहयोगियों में आचार्य भणसाली जी भी थे। पिछले वर्ष 14 अक्तूबर को भणसाली जी हमारे बीच से उठकर सदा के लिए चले गए।

आज हम महात्मा गांधी को तो साल में दो बार याद करते हैं लेकिन उनके निकट साथियों को जनता भूल गयी है। उन लोगों ने ज्वलत देश-भक्ति राष्ट्र पर बलिदान होने की उत्कृष्ट चेतना, देशवासियों के कल्याण के लिए सर्वस्व निछावर कर देना, जीवन मूल्यों की यह त्रिगुणात्म मूर्ति ही राष्ट्र-मंदिर के निर्माण का आधार है।

भारत की पवित्र भूमि पर जनता-जनार्दन की सेवा करतेकरते जिन्होने अपना संपूर्ण जीवन समर्पित किया, उनमे भणसालीजी का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाएगा।

भणसालीजी के त्याग, सेवा और सतसंगी जीवन को देखते हुए एक दिन बापू (महात्मा गांधी) ने कहा था, 'मैं उसे अपने से ऊंचा समझता हूं। यह तीनों काल निर्भय रहता है। यह साधु का लक्षण है। वह जो कर सकता है, मैं नहीं कर सकता' बापू की कारावास की कहानी में आज भी ये शब्द मुखर हैं।

आचार्य भणसालीजी का जन्म 22 मई, 1898 में बम्बई शहर में हुआ था। इनका पूरा नाम जयकृष्ण प्रभुदास भणसाली था। यह सुखवस्तु गुजराती धार्मिक परिवार में पैदा हुए थे। इनके तीन भाई तथा एक बहन है। इनमें जयकृष्ण ही सबसे छोटे थे। बचपन से ही इनकी वृत्ति अध्यात्म की ओर रही। बचपन में इन्होंने अपने परिवार के साथ समस्त भारत के तीर्थ स्थलों की यात्रा की थी। भणसालीजी स्कूल की पढ़ाई में बहुत ही तेज थे। कालेज में इन्होंने फ्रेन्च भाषा सीखी। इनकी पढ़ाई बंबई के सेन्टजेवियर्स कालेज में एम० ए० तक हुई। शिक्षा पूरी होते ही भणसालीजी ने इग्लैण्ड, एशिया, अमरीका, जर्मनी, और चीन आदि देशों की यात्रा की। वहां के जन जीवन का अध्ययन किया। परंतु वे उसमें समरस नहीं हो सके। उन्होंने पाश्चात्य सभ्यता में एक ही महत्वपूर्ण बात देखी। खाना, पीना रहना यही उनका प्रधान तत्वज्ञान है। विदेशों में काम यत्रों की तरह होता है। खाली समय उनके लिये मुसीबत का होता है। विदेशों में लोग भारत की तरह आराम का जीवन व्यतीत करने वाले नहीं होते हैं। विदेशियों का खयाल हमेशा ही विनाश की ओर लगा हुआ है। इसी समय जयकृष्ण जी के बड़े भाई भारत में बीमार हुए। बड़े भाई पर जयकृष्ण का बहुत ही प्रेम था। जयकृष्ण भाई के स्वास्थ्य की खबर पहुंचते ही भारत लौट आये। हिमाचल प्रदेश में सोलन ग्राम में बड़े भाई की सेवा सुश्रुषा करते रहे, परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। भाई की मृत्यु से जयकृष्ण को गहरा दुःख हुआ।

विद्यार्थी जीवन में उनका सम्बन्ध भारत के विख्यात क्रांतिकारी श्री शामजी कृष्ण वर्मा के साथ रहा। वर्माजी जयकृष्ण को सशस्त्र क्रांति की राह पर लाने के विचार में थे। कॉलेज में पढ़ते-पढ़ते विदेशी आंदोलन में शामिल होकर देश सेवा करने की इच्छा हुई। अपने परिवार के लोगों की सलाह से महात्मा गांधी के गुरु गोपाल कृष्ण गोखले के भारत सेवक समिति (सर्वेंटस आफ इंडिया सोसायटी) में दाखिल होने पूना पहुंचे। देश सेवा की इच्छा होने पर भी इन्हें इनकार ही मिला। यह सन् 1925 की बात है। भणसालीजी को समिति में भरती न करने का यही कारण था कि इनके एक नजदीक के रिश्तेदार क्रांतिकारी शामजी कृष्ण वर्मा क्रांतिकारी दल में शामिल हो गये थे। इसी वर्ष बंबई कांग्रेस के अवसर पर गांधी जी से भणसाली जी की पहली मुलाकात हुई। अब वे राष्ट्रीय आन्दोलन में भी भाग लेने लगे। सन् 1920 के आंदोलन में पहली बार जेल यात्रा की।

गांधीजी की पहली मुलाकात में ही भणसालीजी गांधीजी के निष्ठावान् भक्त हो गये। कुछ दिन आगे चलकर भणसालीजी बंबई के नेशनल कॉलेज में प्राचार्य तथा अंधेरी के साधक आश्रम

में आचार्य रहे। इसी समय उन्होंने आध्यात्म तथा विधायक व्रतशील जीवन जीना शुरू कर दिया।

भणसालीजी में आध्यात्मिकता की रुचि बढ़ने लगी। वे साबरमति आश्रम में बापू के पास गये। उस समय उनकी बड़ी भाभी तथा उनके पुत्र साथ में थे। गांधीजी ऐसे निरहंकारी निस्पृह और वैराग्यवान् व्यक्ति को कैसे दूर रख सकते थे। तब से भणसालीजी आश्रमवासी बन गये। पढ़ाई में रुचि इनमें स्वाभाविक ही थी। साबरमति आश्रम में रहते हुए भी गुजरात विद्यापीठ में पढ़ाने की गांधीजी ने इन्हें अनुमति दी। सावरमति आश्रम में भणसालीजी कोटपतलून पहनते थे और शानदार चश्मा लगाते। बाद में उन्होंने खद्दर धारण कर लिया।

साबरमति आश्रम में आत्मज्ञान के निमित्त भणसालीजी ने 44 दिन का उपवास किया। मन पहले से भी अधिक अस्थिर हुआ। आखिर सर्वसंग परित्याग करने का विचार मन में आने लगा। उनके सामने एक ही प्रश्न था। जिस महान शक्ति के बल पर यह विश्व अविरत चल रहा है। वह क्षण भर के लिए भी बंद नहीं होती है। कितना सुन्दर यह विन्यका खेल है। रोजाना फूल उगते हैं। फूलों में तरह-तरह के रंग भरे हैं। मिट्टी तो एक ही है। परंतु फूलों में नाना रंग कैसे? एक ही जमीन में तरह-तरह का अनाज पैदा होता है। हर एक की रुचि भिन्न है। आकाश में रात के समय तारे तथा चन्द्रमा नजर आता है। कितना सुन्दर सुहावना दृश्य प्रतीत होता है। आकाश में बादल आते हैं, वर्षा होती है। मनुष्य जन्म लेता है और कुछ दिन के बाद मर जाता है। पेड़ के पत्ते भी दैवीशक्ति के सामर्थ्य से हिलते हैं। इस दैवी शक्ति का शोध करना चाहिए।

अपनी भाभी तथा अपने बच्चों को साबरमति आश्रम में छोड़कर भणसाली जी निकल पड़े। जिधर राह मिली उधर ही गये। इस परिभ्रमण में हिमालय की गुफाएं ढूंढ़ी, पहाड़ों की ऊंची चोटियों से गिरने वाले झरनों के प्रवाह देख, अनेकों संत, महात्माओं से मुलाकात की, अनखोबत साधना की। जिस शक्ति के लिये भणसालीजी पागल की भांति घूम रहे थे वह इच्छा परिपूर्ण हुई। उनकी हिमालय यात्रा एक अभिनव कष्ट अनुभव का रोचक इतिहास है।

हिमालय से वापिस आने पर सन् 1934 में बापू ने उन्हें साबरमति आश्रम में बुला लिया। दो महान आत्माओं का मिलन हुआ।

हिमालय की यात्रा में एक बार मौन टूट गया। इसका भणसालीजी को बड़ा खेद हुआ। उन्होंने अपना मुंह तांबे के तारों से सी दिया। इससे बात-चीत करना हमेशा के लिए बंद हो गया। गेहूं का आटा पानी में घोलकर नली के द्वारा चूस लेते थे। इस तरह बारह साल मौन रहे। आगे चलकर गांधी जी ने सिला हुआ मुंह खोल दिया।

भणसालीजी निवृत्ति मार्गी थे। उन्हें कर्म मार्ग पर लाने का गांधीजी ने प्रयास किया। गांधीजी ने भणसालीजी को जो दीक्षा दी वह सेवा, त्याग, अन्याय के प्रतिकार की थी। गांधीजी ने भणसालीजी को निवृत्ति मार्ग से कर्ममार्ग पर लाने के लिए प्रथम चरखा देकर कहा—"भणसाली आप मेरे लिए सूत कातोगे? भणसालीजी को गांधीजी पर नितान्त श्रद्धा थी। भणसालीजी ने कबूल किया। धीरे-धीरे भणसालीजी सूत कातने में इतने मस्त हो गये कि बारह-बारह घंटे लगातार सूत कातते रहे। इसी तरह बच्चों को पढ़ाना भी शुरू किया।

भणसालीजी गांधीजी की तरह हमेशा खुराक के बारे में प्रयोग करते थे। जब वे साबरमती आश्रम में थे तो पहले वह खुद पकाकर खाते थे। बाद में नीम के पत्ते और कभी पानी में गुंदे हुए आटे पर कई साल रहे। वह किसी चीज का आग्रह नहीं करते थे। उनकी यह भावना थी कि हमें गरीब से गरीब के खाने पर निर्वाह करना चाहिए। एक समय भणसालीजी दिन रात श्मशान भूमि में रहते थे। कील लगे हुए तख्ते पर सोते थे। इस तरह कई प्रयोगों में सफल हुये हैं।

भणसालीजी साबरमति से सेवाग्राम (वर्धा) में आए। यह गांधीजी की कर्मभूमि थी। सेवाग्राम के आश्रम में लोग भणसालीजी को 'काका' कहते थे। रात-रात अकेले ही स्वयं पिसते थे। खुद का पेट खुद परिश्रम करके कमा कर भरना चाहते थे। यह भणसालीजी का मूल मंत्र था। अपना जीवन दूसरे पर अवलंबित रहना भणसालीजी को पसंद नहीं था वे कहते थे कि परिश्रम करने पर जो भूख लगती है उसकी रुचि अलग है। उनका कहना था कि खुद परिश्रम करो और जीवन व्यतीत करो। आश्रम में अनेक बार भणसालीजी का गांधीजी से वाद-विवाद होता था। कभी-कभी भणसालीजी वादविवाद में गांधीजी को हतप्रभ कर देते थे।

गांधीजी जब जेल में थे तब भणसाली जी देश पर्यटन के लिये निकले। उस समय उन्होंने मौन व्रत धारण कर लिया था। नीम के पत्तों के सिवा कोई चीज खाते नहीं थे। कमर में मोटा रस्सा और मोटे खद्दर की लंगोटी पहनते थे। जेल से रिहा होने पर गांधीजी को इस बात का पता चला। उन्होंने तुरंत आदमी भेजकर भणसालीजी को बुला लिया। इस भ्रमण के अवसर पर इन्हें बड़ी तकलीफ हुई। इसका अद्भुत वेष देखकर नासमझ लोग इन्हें पत्थर भी मारते थे। भणसालीजी उसे पुण्य समझकर हंसते-हंसते सह लेते थे। परंतु प्रेमी जनों को इससे बड़ा दुःख पहुंचता था। आखिर गांधीजी की इच्छानुसार भणसालीजी आश्रम में आये और वहीं रहने लगे।

भणसालीजी खाने-पीने तथा सोने के विषय में कोई बन्धन नहीं मानते। फिर भी वह प्रातः 4 बजे उठते थे। मन आए तो प्रार्थना में जाते, वरना कभी नहीं भी जाते। वह अव्वल दर्जे के शिक्षक थे। कोई भी उनकी पढ़ाई से ऊबता नहीं। बच्चे तो इनके पास बड़े प्रेम से पढ़ते थे। साथ ही खेल-कूद भी जारी रहता था। छोटे बालक कभी कंधे पर चढ़ते, कभी गोद में

बैठ जाते थे। फिर भी पढ़ाई जारी रहती। अगर किसी को इनके यहां आने में तकलीफ होती तो भणसालीजी उनके घर जाकर उन्हें फुरसत के साथ पढ़ाते थे।

यह घटना सन् 1942 की है। बापू ने अंग्रेजी राजसत्ता के खिलाफ 'भारत छोड़ो' का नारा बुलंद कर दिया था। अंग्रेजी राजसत्ता ने सभी देश भक्तों को जेल की कोठरियों में बंद कर दिया था। परंतु जनता का साहस अदम्य था। लोग-जगह-जगह सत्याग्रह कर रहे थे। समूचे देश में अंग्रेजों के खिलाफ वातावरण तैयार हो गया था। इसी समय मध्यप्रदेश तथा आज के महाराष्ट्र प्रदेश में चिमूर और आष्टी गांवों में अत्याचारी पुलिस अफसर की हत्या कर दी गयी। बस फिर क्या था, अंग्रेजी शासकों ने दोनों गांव सेना द्वारा उजाड़ दिये। दोनों गांवों में एक भी पुरुष नहीं रहा। सेना ने महिलाओं पर अमानुषिक अत्याचार किया। सती-साध्वी महिलाओं का शील भंग किया। सर्वत्र त्राहि-त्राहि मची। इस घटना को सुनते ही भणसालीजी चिमूर तथा आष्टी के लिए पैदल चल पड़े। यहां के भयानक अत्याचार से उनका मन तिलमिला उठा। उन्होंने उसी क्षण अत्याचार के विरोध में प्राणांतिक अनशन प्रारंभ कर दिया। अब बापू के मानस पुत्र जमनादास बजाज की कुटिया के आगे एक छोटे से कमरे में भणसालीजी अनशन कर रहे थे। दिन मे केवल एक या दो बार थोड़ा पानी पीते थे। चालीसवें दिन पूना के आगाखान महल में गांधीजी को एक सत्याग्रही द्वारा आष्टी चिमूर कांड तथा भणसालीजी के अनशन का पता लगा। गांधीजी ने कहा, 'भला मैं अपने साथी को कैसे मरने दूंगा। भणसालीजी की सहानुभूति में बापू ने भी अनशन शुरू कर दिया। धीरे-धीरे बापू का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। आखिर अंग्रेज शासकों ने अपनी हार मानली। गांधीजी का 29वें दिन तथा भणसालीजी का 65वें दिन प्राणांतिक अनशन समाप्त हो गया।

भणसालीजी वर्धा सेवाग्राम आश्रम छोड़ने के बाद हैदराबाद के दंगों के दिनों मे कुछ महीने वहां के पीड़ित लोगों की हालत के अवलोकनार्थ पैदल घूमते रहे। बहनों पर होने वाले अत्याचार को देखकर उन्होंने सन् 1948-1949 में दो-बार उपवास किया था। चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य के आश्वासन पर उन्होंने अनशन तोड़ा और आज से कुछ वर्ष पूर्व महाराष्ट्र प्रान्त के नागपुर जिले की सावनेर तहसील में राखली नामक ग्राम में स्थिर हुए।

यहां की एक घटना बड़ी ही विचित्र हैं। (राखली) गांव के लोग खूब शराब निकालते थे और दूर-दूर से आकर बेचते थे। यह नागपुर जिले का करीबन सबसे बड़ा शराबियों का अड्डा है। भणसालीजी उपदेश देकर लोगों को शराब से मुक्त कराना चाहते थे। धीरे-धीरे यहां के धंधा करने वाले लोगों के धंधे पर असर पड़ने लगा। एक दिन कुछ गुंडों ने रात के समय निद्रा अवस्था में शराब की बोतल भणसालीजी की कुटिया में रख दी। पुलिस के कर्मचारियों को पैसा खिलापिलाकर पचनामा करके भणसालीजी पर केस चला दिया गया। जब अदालत में भणसालीजी पेश हुए तो कोर्ट के सामने विरोधी पार्टी के वकील को 'नोन सैन्स' कहने पर वह बड़ी गड़बड़ी हुई। जज ने भणसालीजी को शब्द वापस लेने के लिए कहा। तब भणसालीजी ने साफ शब्दों में कहा—जो मैंने कहा वह ठीक ही कहा है। मुकद्मे का फैसला भणसालीजी के हक मे हुआ।

मुझे कुछ दिन भणसालीजी के सानिध्य में रहने का शुभ अवसर प्राप्त होने का गर्व है। उनके मुख से सुने तथा स्वयं देखे और अनुभव किए कुछ रोचक संस्मरण भणसालीजी के संत स्वभाव का सुन्दर परिचय देते हैं।

आष्टी चिमूर कांड के बाद धीरे-धीरे मेरा मन पूज्य गुरूदेव भणसालीजी की ओर आकृष्ट होने लगा। एक दिन मैंने भणसालीजी से कहा, पिताजी! आप मुझे अपना सेवक मान लो मुझे कुछ उपदेश दो। 'पिताजी ने कहा भाई वानखड़े, मैं केवल मर्म की एक ही बात आपको कहता हूं मनुष्य सेवा ही ईश्वरीय सेवा है।" उसी दिन से मेरा मन छात्र-सेवा की ओर आकृष्ट हुआ।

निम्न घटना मुझे स्वयं भणसालीजी ने सुनाई थी। नासिक के पास किसी जेल में नेतागण थे। भणसालीजी भी उसी जेल में थे। वहां पर जो जेलर था वह बड़ा ही अत्याचारी था। उसे बुरे कर्म करने की आदत थी। उसने बहुत से लोगों को अपने अत्याचारों के द्वारा तंग किया था। लोग उससे घबराते थे। एक दिन वह भणसालीजी की कोठरी में आया। उस समय भणसालीजी का अनशन शुरू था। वह उन पर भी अत्याचार करने वाला था। भणसालीजी ने नजर उठाकर आंख से आंख मिलाकर कहा 'क्या है?' वह भणसालीजी की ओर न देख सका। तुरंत अपने आफिस में भाग गया। दूसरे दिन उसने गांधीजी से शिकायत की और कहा, आप के पास के कमरे का आदमी बड़ा भयानक है। उसकी आंखो से अग्नि बरसती है।' गांधीजी ने कुछ नहीं कहा। जब तक भणसालीजी जेल में थे तब तक वह जेलर उस कमरे में नहीं गया।

पूज्य भणसालीजी परिश्रमी तथा कार्यतत्पर व्यक्ति थे। उन्होंने जीवन में कभी थकावट महसूस नहीं की। घंटों लगातार काम करते रहना। रात-दिन पैदल चलना। नींद की परवाह भी न करना। इस देश में ऐसे बहुत थोड़े लोग होंगे जिन्होंने इस तरह निष्ठापूर्वक अपना साधुजीवन व्यतीत किया।

बापू ने भणसालीजी के बारे में जो कहा, वह बिलकुल सत्य है। उनका संपूर्ण जीवन संत तुकारामजी की तरह बिल्कुल ही त्यागमय था। वह एक छोटी सी तहमत लगाकर रहते थे, बिलकुल सारा अन्न सेवन करते थे। वृद्ध अवस्था होने पर भी उन्हें जनता जनार्दन की सेवा का सदैव ध्यान रहता था। दीन, दुखी, आदिवासी, हरिजन और नीचे दबी हुई जाति के लोगों के बारे में उनके मन में अपार प्रेम था। सही रूप में वह बापू के शब्दों में इस युग के महान संत थे।

आचार्य भणसाली जी का निधन 14 अक्तूबर 1982 को शाम के 6 बजकर 35 मिनट पर हुआ।

ध्वनि रूपक

Rs. 250

Words 5000

लड़ाई

● प्रताप सहगल

पात्र :-

मधु
मनीष
मांजी
महेन्द्र
पिताजी
पुरुष स्वर

हल्का संगीत
(पत्तों की खड़खड़ाहट, तेज हवा का शोर, कुछ अस्पष्ट आवाजें)

मधु : (तेज सांसों की आवाज) हलो मनीष ! बस, बस कुछ मत कहना, आज फिर देर हो गई ।

मनीष : हमेशा की तरह ।

मधु : देख रहे हो कितनी तेजी से तुम तक पहुंची हूं ।

मनीष : वो तो देख ही रहा हूं ।

मधु : नाराज हो गए । अब तुम ही बताओ, बस न मिले, स्कूटर न मिले तो क्या करूं ।

मनीष : खैर, यह कोई नई बात नहीं है । तुमने आज फोन क्यों नहीं किया ।

मधु : किया था । मनीष महाशय सीट पर नहीं थे । कोई मि० चौपड़ा बोले थे । उन्होंने मेरा मैसेज नहीं दिया ।

मनीष : नहीं तो ।

मधु : तो यह भी मेरा ही कुसूर हुआ ।

मनीष : अब नाराज़ होने की तुम्हारी बारी है । असल में बात यह है मधु कि जब भी यूनिवर्सिटी में आता हूं, मेरी आंखें लगातार तुम्हे खोजने लगती हैं और जब तुम जल्दी से नजर नहीं आती न तो बस एक निराशा मुझे घेर लेती है और फिर वही निराशा धीरे-धीरे नाराजगी में और नाराजगी गुस्से में तब्दील होती जाती है ।

मधु : और तभी मैं सामने पड़ जाती हूं उस गुस्से को झेलने के लिए ।

मनीष : नहीं । मैं तो तुम्हें हमेशा प्यार करना चाहता हूं और जब किसी वजह से ऐसा नहीं हो पाता तो उसका रूप बदल जाता है । गुस्सा भी प्यार का दूसरा नाम है ।

मधु : बस लगे बघारने फिलासिफी ।

मनीष : फिलासिफी नहीं, सिर्फ अनुभव । एक एहसास जिसे मैं सिर्फ तुम्हारे सामने और तुम्हें ही कह पाता हूं ।

मधु : सच मनीष ! कितने अच्छे थे वे दिन, जब हम दोनों क्लास रूम में भी बात करने से बाज नहीं आते थे ।

मनीष : हां, याद है एक दिन जब विद्यापति पढ़ाया जा रहा था और तुमने एक शब्द का अर्थ मुझसे पूछ लिया था ।

मधु : हां, सर बहुत बिगड़े थे ।

मनीष : और एक दिन भाषा-विज्ञान पढ़ते हुए तुमने कितनी गड़बड़ कर दी थी ।

मधु : मुझे तो सब याद करके बड़ा अच्छा लगता है । यूनिवर्सिटी में आकर जो ताजगी मिलती है, वो और कहां ?

मनीष : तभी तो मैं सारा दिन काम करने के बाद एकाध घण्टा रोज यहीं बिताता हूं । जिस रोज तुम आ

जाती हो तो लगता है कि बस गुजरा वक्त लौट आया है, लौट कर यहीं कहीं ठहर गया है। हमारे पास। बिल्कुल हमारे करीब और फिर से हमें लौटना पड़ता है दूसरी दुनिया में।

मधु : यह अब और ज़्यादा दिन नहीं चल सकेगा मनीष! कल मां पिताजी से किसी लड़के का ज़िक्र कर रही थीं।

मनीष : तो ?

मधु : मैं चाहती हूं कि अब हम जल्दी से शादी कर लें।

मनीष : तुमने मां से कुछ नहीं कहा।

मधु : क्या कहती ?

मनीष : यही कि तुमने अपना जीवन-साथी पसन्द कर लिया है।

मधु : मेरे लिए यह कहना इतना आसान नहीं। कई बार मैंने मां से सब कुछ बता देने की कोशिश की, पर पता नहीं, हर बार क्यों रुक गई।

मनीष : तुम्हें मुझ पर भरोसा नहीं ?

मधु : है।

मनीष : तो खुद पर नहीं ?

मधु : शायद यही सच है।

मनीष: पर यह कब तक चलेगा। एक न एक दिन तो तुम्हें बताना ही पड़ेगा।

मधु : तुम अपनी मां को हमारे घर क्यों नहीं भेज देते ?

मनीष : वो बहुत पुराने ख्यालों की है। फिर भी बात करूंगा।

मधु : लोग जाने लगे हैं।

मनीष : अभी जल्दी क्या है। आओ एक-एक कप कॉफी हो जाए।

मधु : नहीं, अब देर हो चुकी है। लायब्रेरी भी बन्द हो चुकी है।

मनीष : तो क्या हुआ, रास्ते में तुम्हें ड्राप करता जाऊंगा।

मधु : आज घर पर कोई मेहमान आने वाले हैं। कल बैठेंगे।

मनीष : अच्छा! जैसी हुज़ूर की मर्ज़ी। चलिए। (स्कूटर स्टार्ट करने और चलने की आवाज़) बैठिए मैम साब! चलें।

मधु : कितनी बार कहा सीट ज़रा सी नीची करवा दो। इस पर बैठकर तो लगता है, जैसे पहाड़ी पर चढ़ गए हों।

मनीष : यह भी हो जाएगा।

मधु : तो आज ही मां से बात करोगे।

मनीष : ज़रूर!

(स्कूटर की आवाज़ मन्द होते-होते लुप्त हो जाती है)

(संगीत अन्तराल)

(कालबेल बजती है।)

माँ : (अन्दर से) कौन है ?

मनीष : मैं हूं मां!

माँ : अच्छा खोलती हूं (दरवाज़ा खुलने का स्वर) आज बड़ी देर कर दी। मैं तो घबरा ही रही थी। कहां चला गया था ?

मनीष : कहीं नहीं मां, बस यूनिवर्सिटी तक गया था।

माँ : तू पढ़-पढ़ा लिया, अब वहां जा कर क्या करता है ?

मनीष : बस, यूं ही मां अच्छा लगता है।

माँ : चल मुंह हाथ धो ले, खाना लगा दूं।

मनीष : भैया कहां है ?

माँ : उसका फोन आया था। कहीं पार्टी में गया है। लेट आएगा।

मनीष : हूं... बहुत देर से...

माँ : क्या पता, बहू घर में न हो तो बेटे का भी कोई ठिकाना नहीं। वो घर में होती है तो ठीक छः बजे घर आ जाता है। वो गई मायके और वह भी गायब, मां की तो जैसे कोई जरूरत ही नहीं। तू भी बेटा जल्दी से कर ले शादी। ताकि मेरी मुक्ति हो।

मनीष : हां, आज मैं भी तुमसे यही बात करने वाला था। पर पहले खाना तो खिला।

माँ : वो तो मैंने सब तैयार कर रखा है।

(प्लेटें लगाने के स्वर)

चल आ। बैठ!

(एक लम्बी खामोशी)

हां तो बता क्या कह रहा था तू।

मनीष : बात यह है मां कि तू रोज़ पूछती है न कि यूनिवर्सिटी क्या करने जाता है तो क्या बताऊं मां कि वहां... वो है न... मधु... उसी से मिलने... जाता हूं।

माँ : मधु! कौन है वो।

मनीष : वो मां एक सुशील और सुन्दर लड़की है। हम दोनों ने एम० ए० साथ-साथ ही किया है।

माँ : एक ही क्लास में।

मनीष : हां।

माँ : फिर तो वो उम्र में भी तेरे बराबर की होगी।

मनीष : यह तो मैंने कभी पूछा नहीं, पर हो सकता है हो, या न भी हो। पर उससे क्या फर्क पड़ता है।

मां : बेटा, लड़की की उम्र लड़के से छोटी होनी चाहिए।

मनीष : मान लो कि छोटी है और मेरा ख्याल है कि जरूर है, क्योंकि देखो न मैं तो बीच में दो साल पढ़ नहीं सका, पर वो तो लगातार पढ़ती रही है।

मां : बड़े से बात की।

मनीष : नहीं।

मां : भाभी से।

मनीष : नहीं। मैंने सोचा कि पहले तुम्हीं से बात कर लूं तो...।

मां : कहीं काम करती है?

मनीष : नहीं।

मां : रहती कहां है?

मनीष : माडल टाउन में।

मां : उसके पिता क्या करते हैं।

मनीष : इन्कम टैक्स आफिसर हैं।

मां : हूं. उनकी जात क्या है?

मनीष : कुरड़िया।

मां : (खामोशी) कुरड़िया...

मनीष : हाँ।

मां : तो तू उस लड़की का ख्याल छोड़ दे।

मनीष : वजह!

मां : वजह यह कि वह नीची जात की है और हमारी जात-बिरादरी मे उसकी शादी नहीं हो सकती।

मनीष : यह क्या कह रही हो मां, नीची जात क्या होती है?

मां : नीजी जात-नीची जात होती है, जिसे तुम अंग्रेजी में शेडूल्ड कास्ट कहते हो।

मनीष : लेकिन मा, इससे क्या आदमी आदमी में फर्क आ जाता है।

मां : हां, आता है, हमारे बुजुर्गों ने जाति-पांति यूं ही नहीं बनाई, नीची जात वालों के ऊंची जात वालों से कभी भी रिश्ते नहीं हो सकते।

मनीष : लेकिन मां, मैं तो सिर्फ मधु को जानता हूं। उसे चाहता हूं, वो भी मुझे बेहद चाहती हैं।

मां : चाहते रहो, पर यह शादी नहीं हो सकती।

मनीष : मां! मधु एक अच्छी और सुशील लड़की है। देखने में भी सुन्दर है।

मां : मैंने कहा न, उसका ख्याल छोड़ दो, यह शादी नहीं हो सकती।

मनीष : मां, जो बात तुम आज कह रही हो उसका वक्त खत्म हो चुका है। एक जमाना था जब वर्ण व्यवस्था बनायी गयी थी। तब आदमी की जाति जन्म से नहीं कर्म से मानी जाती थी और आज हम उस परम्परा को सड़े हुए रूप में स्वीकार करते चले आ रहे हैं। आज उस जाति व्यवस्था का कोई मतलब नहीं।

मां : तुम अभी बच्चे हो। नहीं समझ सकते कि एक ब्राह्मण या क्षत्रिय के संस्कारों और एक शूद्र के संस्कारों में फर्क होता है। उनके खून में फर्क होता है और मैं नीची जाति को अपने उच्च-कुलवंश में स्वीकार नहीं कर सकती।

मनीष : यह दकियानूसीपन है माँ! इसका कोई तर्क हमारे पास नहीं है। इन्सान तो एक इन्सान के रूप में ही आता है। सभी के पास एक सी शक्तियां होती हैं। उसे जाति-पांति के चक्कर में हम डालते हैं। यह दोष उसका नहीं, हमारी व्यवस्था का है और भुगतना पड़ता है उसे, जिसने तुम्हारे कहने के मुताबिक उच्च वंश में जन्म न लेकर नीच वंश में जन्म लिया। वो यह अन्याय झेलने के लिए अभिशप्त है। यह अन्याय है। मां अन्याय है।

मां : अन्याय नहीं कर्म, जो जिसके कर्म होते हैं, उसे वैसा ही मिलता है।

मनीष : नहीं मां, यह कर्मवाद, यह जातिवाद सब ग़लत है। मैं इसे नहीं मानता। मधु से शादी करूंगा।

मां : क्या तू उस लड़की के लिए अपनी मां को छोड़ देगा।

मनीष : नहीं, मां को छोडूंगा नहीं, मनाऊंगा, समझाऊंगा।

मां : यह नामुमकिन है। मेरा फैसला अटल है। तुम्हारी ग़लत बात को मैं नहीं मान सकती।

मनीष : तो ठीक है, मैं भी जा रहा हूं। तुम्हारे इन सड़े हुए रिवाजों पर मैं अपने आदर्श की बलि नहीं चढ़ा सकता। जाता हूं।

मां : बेटा, सुनो तो (खामोशी) चला गया... अब क्या करूं, कहां जाऊं।
(तभी आवाज़ आती है)

महेन्द्र : मां! ओ मां!!

मां : कौन महेन्द्र! बेटा! तुझे मनीष तो नहीं मिला रास्ते में।

महेन्द्र : नहीं तो। क्यों क्या हुआ। इतनी घबराई हुई क्यों हो।

मां : वो चला गया बेटा, मुझे छोड़ कर चला गया।

महेन्द्र : छोड़कर चला गया...कहां...साफ-साफ कहो मां।

मां : तू जा, जल्दी, पहले उसे ढूंढ के ला। यहीं कहीं होगा। फिर सारी बात बताऊंगी।

महेन्द्र : घबराओ मत मां, आराम से बठो, मैं अभी गया और आया। मैं जानता हूं वो कहां होगा (जाते हुए) दरवाजा बन्द कर लो।

मां : अच्छा

(दरवाजा बन्द करने की आवाज)

(संगीत अन्तराल)

महेन्द्र : मां! मां!! दरवाजा खोलो।

(दरवाजा खुलता है)

महेन्द्र : यह लो सम्भालो अपने लाड़ले को।

मां : कहां था।

मनीष : तुम्हें क्या फर्क पड़ता है मां, मैं चाहे कहीं भी जाऊं।

मां : यही तो मुश्किल है बेटा! दोनों तरह से फर्क मुझे ही पड़ता है। महेन्द्र! तू बता कि तेरी शादी के वक्त तेरे पिता ने खानदान की कितनी फिक्र की थी।

महेन्द्र : हां, वो तो ठीक है। जो था सो हो गया, पर अब अगर मनीष मधु से शादी करना ही चाहता है तो तुम्हें क्यों कर एतराज है।

मां : मुझे एतराज है।

महेन्द्र : तो यह फिर कहीं चला जाएगा।

मां : मुझे धमकी देते हो

महेन्द्र : नहीं, समझा रहा हूं, मुझे रास्ते में मनीष ने सब बता दिया है, तुम अपना नजरिया इस पर क्यों लादना चाहती हो।

मां : आज तेरे पिता होते तो देखती तुम कैसे...

मनीष : छोड़ो मां, मैं तब भी वही करता जो अब कर रहा हूं।

मां : अच्छा जाओ अब सो जाओ, मैं जेठ जी को चिठ्ठी लिखती हूं।

मनीष : मां, वो तुम्हारी बात है, पर मैं बता चुका हूं कि मैं शादी मधु से ही करूंगा ओर वो भी तुम्हारे आशीर्वाद से।

मां : नहीं....हां (घबराई सी) अभी सो जाओ, फिर देखेंगे।

महेन्द्र : चल मनीष, सो, भागता क्यों है घर से। (संगीत अन्तराल)

(यूनिवर्सिटी का शोर)

मधु : श्रीमान् मनीष महाशय! आप बोलते क्यों नहीं। क्या हुआ जो शाम के 6 बजे भी चेहरे पर दोपहर के बारह बजा रखे हैं।

मनीष : बात ही कुछ ऐसी है मधु।

मधु : कहो तो ?

मनीष : मां-नहीं चाहती कि तुम्हारी और मेरी शादी हो।

मधु : कोई खास बात ?

मनीष : तुम सुनोगी तो तुम्हें दुःख लगेगा, इसलिए तुमसे कहना नहीं चाहता।

मधु : ऐसी क्या बात है। मैं तो उनसे कभी मिली तक नहीं।

मनीष : वो ऐसी ही बात है जो बिना मिले हो जाती है और पता चले तो दुःखी करती है।

मधु : मनीष! तुम हो न मेरे साथ तो मुझे कोई बात दुःख नहीं देगी, बताओ तो सही; शायद मैं कुछ मदद कर सकूं।

मनीष : तुम इसमें कुछ मदद नहीं कर सकतीं।

मधु : तब भी बताओ तो सही।

मनीष : तुम अपने मां-बाप बदल सकती हो।

मधु : मजाक कर रहे हो ?

मनीष : मजाक नहीं, मैं सीरियस हूं। क्या हमें यह अधिकार नहीं है कि हम अपने मां-बाप का चुनाव कर सकें।

मधु : यह नामुमकिन बात है। यह तो चान्स है कि हम जहां पैदा हो गए, बस वही हमारे मां-बाप हुए।

मनीष : तो हम इस चान्स के कारण अभिशप्त क्यों हों वो सब झेलने के लिए, जिसे हमारी आत्मा स्वीकार नहीं करती ?

मधु : मैं समझी नहीं।

मनीष : मेरी मां का कहना है कि हम दोनों की शादी इसलिए नहीं हो सकती कि हमारी जात में बड़ा फर्क है। वह खुद को बड़ी ऊंची जात की समझती हैं और तुम्हें...छिक...मुझे तो कहते हुए भी शर्म आती है।

(खामोशी)

मनीष : उदास हो गयी न ? मैं कहता था न मधु मत पूछो मुझसे।

मधु : तुम्हारी मां शायद ठीक ही कहती हैं मनीष।

मनीष : क्या कहा मधु! यह तुम कह रही हो....तुम। जिसे मैं अपनी शक्ति समझता हूं और सोचता हूं कि कहीं अगर मैं डगमगाने लगूंगा तो तुम मुझे मेरी शक्ति का एहसास कराओगी, और तुम भी....

मधु : मैं नहीं चाहती कि मेरी वजह से तुममें और मां में कोई कड़वाहट आए।

मनीष : सवाल कड़वाहट का नहीं है मधु, जब सवाल सामने यह है कि सदियों से चली आ रही इस गली-सड़ी व्यवस्था के आगे मैं भी और लोगों की तरह से सिर झुका दूं या इसके खिलाफ संघर्ष करूं।

मधु : मनीष! तुम इतने बड़े हो, यह मैंने पहले कभी नहीं जाना।

मनीष : तुम ग़लत कह रही हो। यह वो लड़ाई है, जिसे हमें लड़ना ही चाहिए। तब 'बड़ेपन' की कोई भी बात इसमें नहीं है।

मधु : तो फिर ?

मनीष : मैं तुमसे शादी करूंगा और इसके लिए मैं जल्दी ही तुम्हारे पिताजी से मिलूंगा।

मधु : मां जी को यह सब अच्छा नहीं लगेगा।

मनीष : जानता हूं, पर और कोई रास्ता भी तो नहीं है।

मधु : मैं भी मां से आज ही बात कर लूंगी।

मनीष : तो ठीक है चलो।

(संगीत अन्तराल)

(काल बैल बजती है)

दरवाजा खुलता है।

मनीष , मधु जी यहीं रहती है।

पुरुष स्वर : आप...?

मनीष : मैं मनीष हूं।

पुरुष स्वर : ओ....आओ बेटा, मैं मधु का पिता हूं। अन्दर आओ।

मनीष : जी शुक्रिया।

पिता : बैठो।

मनीष : जी।

(खामोशी)

मनीत : दरअसल मैं आपसे एक जरूरी बात करने आया था।

पिता : हां, हां, मुझे मालूम है। मधु की मां ने मुझे सब बता दिया है।

मनीष : तो फिर आपने क्या सोचा है ?

पिता : देखो बेटा, मेरी राय में तो तुम दोनों समझदार हो और जो फैसला तुम दोनों ने किया है, वो ठीक ही है। मुझे और मधु की मां को तो कोई एतराज नहीं...पर सुना है कि आपकी मांजी को यह रिश्ता मंजूर नहीं।

मनीष : जी, आपने ठीक ही सुना है, अगर उन्हें रिश्ता मंजूर होता तो यह सब बात करने मैं नहीं, वह आतीं।

पिता : मनीष बेटे ! यह तो अच्छा नहीं लगता। अरे मधु !

मधु : जी !

पिता : बेटा चाय तो लाओ, मैं तो पूछना ही भूल गया था और तुम्हारी मां कहां है !

मधु : (बाहर आकर) दोपहर को बुआजी आयीं थी, [illegible]

पिता : अच्छा। चाय तो ले आओ। हां तो मनीष बेटे ! यह तो अच्छा हुआ कि मैं आज दफ्तर से जल्दी निकल सका, नहीं तो रोज़ रात के आठ बजते हैं।

मनीष : जी, मुझे भी अक्सर देर हो जाती है।

पिता : हमें पहले से पता होता कि तुम आज आने वाले हो तो वो भी घर पर ही रहती। खैर। उन से तो मुलाकात कभी भी हो जाएगी, पर तुम्हारी मां जी को आखिर एतराज क्या है, मेरा मतलब है कि वो चाहती क्या हैं ? कहती क्या हैं ?

मनीष: उनके और मेरे नजरिए में बुनियादी फर्क यह है कि वह आदमी को उसकी जात से पहचानती हैं और मैं उसे उसके कर्म से, गुण से, या चरित्र से।

पिता : हूं, यह समस्या सिर्फ तुम्हारी नहीं हैं मनीष। यह समस्या तो पूरे देश की है। पूरे देश में देख रहे हो न जात-पात की वजह से कितने फसाद हो रहे हैं। मैं तो चाहता हूं कि इस व्यवस्था को ही खत्म किया जाना चाहिए।

मनीष : चाहते तो और भी बहुत लोग हैं, लेकिन इस दिशा में पहल बहुत कम करते हैं। और कोई संगठित प्रयास तो करता ही नहीं।

मधु : (चाय रखने की आवाज) यह लीजिए।

पिता : (चाय सुड़कने की आवाज) आह ! रिफ्रेशिंग कप आफ टी।

मनीष : जी !

पिता : बैठो मधु !, चाय का एक कप तुम भी लो।

मधु : जी !

पिता : जात-पात की समस्या पर बात हो रही है ? मनीष कह रहे थे कि इसे खत्म करने के लिए कोई सगठित प्रयास नहीं हो रहा। मैं भी यही मानता हूं। सिर्फ सरकार के कहने या करने से या मनीष जैसे दो-चार लोगों के सामने आने से यह समस्या खत्म नहीं हो जाएगी।

मनीष : बहुत मामूली सही, कुछ न कुछ असर तो दूसरे लोगों पर भी होता ही है।

पिता : अब देखो न, तुम्हारी इस भावना का असर— तुम्हारी मां जी पर ही नहीं हो रहा। मनीष बेटे ! जिंदगी कोई सीधी लकीर नहीं है, जिस पर आसानी से चला जा सकता है। इसके रास्ते बड़े टेढ़े और अन्धे हैं। इसलिए एक बार फिर सोच लो।

मनीष : मैं समझा नहीं पिताजी, आप मुझे इतना कमजोर क्यों समझ रहे हैं।

पिता : कमजोर नहीं समझ रहा, बल्कि आने वाले खतरों से आगाह कर रहा हूं।

[illegible] : कैसा खतरा ?

पिता : देखो तुम अगर मधु से शादी कर लेते हो तो तुम्हारी मां मधु को बहू के रूप में स्वागत नहीं कर पाएंगी। उस स्थिति में या तो तुम्हें अलग से रहना होगा, जिसे मैं बहुत अच्छा नही समझता, क्योंकि तुम्हारी मां तुम दोनों बेटों पर ही निर्भर करती है और अगर मधु वहीं रहेगी तो सम्भव है कि घर में हालात खुशगवार न हों। इसलिए मैं चाहता हूं कि इस मामले में तुम्हारी मां जी के नज़रिए में परिवर्तन होना बहुत ज़रूरी है।

मनीष : जिसकी मुझे कतई उम्मीद नहीं है।

पिता : तुम्हारे एक बड़े भाई भी तो है। वे क्या करते हैं?

मनीष : उनका कुछ पता नहीं चलता। कभी तो लगता है कि वे भी वैसा ही सोचते है, जैसा कि मैं और कभी लगता है कि नहीं, वो मां जैसा सोचते हैं और कभी लगता कि वे कुछ सोचते ही नहीं।

पिता : और कोई बड़ा।

मनीष : हैं, मेरे ताऊजी, उन्हें मां ने चिट्ठी भी लिखी है, पर वहां से भी जो जवाब आएगा, मुझे मालूम है। (खामोशी)

मनोष : तो फिर?

पिता : फिर क्या, जैसी तुम दोनों की खुशी। बस मधु की मां आ जाए और बात कर लेते हैं।

मनीष : मैं चाहता हूं कि शादी एकदम सादा तरीके से हो, न कोई शोर, न कोई फिजूलखर्ची...

पिता : ठीक है, तुम्हारा फोन नम्बर मेरे पास है। जल्दी ही खबर करूगा।

मनीष : तो मुझे इज़ाजत है। चलता हूं, नमस्ते!

पिता : जीते रहो।
(संगीत अन्तराल)
(मन्दिर की हलचल)
(टैक्सी रुकने की आवाज़)

पिता : आओ मनीष! तुम्हारा ही इन्जार तो रहा है, मां जी नहीं आयीं।

मनीष : मैंने उन्हें बहुत समझाया, पर वे नहीं मानतीं।

पिता : और महेन्द्रनाथ जी।

मनीष : बड़े भैया भी मां जी के पास हैं। मैंने उन से कहा कि वे वहीं रहें।

पिता : बेटा! मुझे यह सब बड़ा अच्छा लगते हुए भी कुछ अच्छा नहीं लग रहा। ऐसे मौकों पर बुजुर्गों का रहना शुभ भी है और अच्छा भी लगता है।

मनीष : बताइए और क्या करूं। आप चाहें तो एक बार और कोशिश कर लीजिए।

पिता : नहीं बेटा, मैंने तो पहले भी बड़ी कोशिश करके देख ली। कुछ नहीं हुआ। चलो अन्दर, वेदी तैयार है।

मनीष : चलिए।
(हलका शोर। विवाह के समय के मन्त्रोच्चारण)

स्वर : बधाई हो, बधाई हो।
विवाह मंगलमय हो।
जोड़ी हमेशा बनी रहे।

स्वर : जीती रहो बेटा!
जीते रहो।

पिता : जीते रहो। हमारी ओर से मां जी से माफी मांग लेना। अब चलो।
(टैक्सी के दरवाज़े खुलते हैं। बन्द होते हैं। टैक्सी चलती है, रुकती है। फिर दरवाज़े खुलते हैं, बन्द होते हैं)

मनीष : आओ मधु!

मधु : मुझे तो मां जी के सामने जाने में बड़ा डर लग रहा है।

मनीष : देखो मधु! अब डरने से काम नहीं चलेगा। अब तो तुम मेरी धर्मपत्नी हो और यह सबको. मां को भी स्वीकार करना ही पड़ेगा।

मधु : टैक्सी का बिल तो दे दो।

मनीष : अरे हां, देखा, शादी होते ही गड़बड़ी शुरू हो गयी। लो भई।
(टैक्सी चली जाती है)
(काल बैल बजती है)
(दरवाज़ा खुलता है)

महेन्द्र : तो हो गयी शादी।

मनीष : मधु! यह बड़े भैया है, भाभी जी मायके गयी हुई हैं।

मधु : प्रणाम!

महेन्द्र : जीती रहो। अब बाहर ही खड़े रहोगे कि अन्दर भी चलोगे।

मनीष : फुसफुसाहट के स्वर में) मां जी कहां हैं।

महेन्द्र : अपने कमरे में।

मनीष : कुछ गुस्सा कम हुआ या नहीं।

महेन्द्र : क्या पता? अन्दर चलो, सब मालुम हो जाएगा।

मनीष : आओ मधु!

मां : वहीं रुको।

मनीष : मां जी

मधु : मां जी! प्रणाम!

मां : जीती रहो, सदा सुहागिन रहो।

मनीष : मां मुझे भी तो आशीर्वाद दो।

मां : जीता रह। हां मुझे जरा बहू का शगुन तो कर लेने दे।

मनीष : (आश्चर्य से) मां,

मां : बड़ी सुन्दर बहू लाया है रे। यह तो साक्षात् मधु है।

मनीष : मां! तो क्या तुमने...।

मां : हां, हां, अब अन्दर चलो। महेन्द्र!

महेन्द्र : जी!

महेन्द्र : सबको खबर दो कि मनीष और मधु की शादी की खुशी में आते मंगलवार को पार्टी होगी।

मनीष : मां, मेरी तो कुछ भी समझ में नहीं आ रहा कि इस अचानक परिवर्तन की वजह क्या है?

महेन्द्र : यह मैं बताता हूं। बैठो, पानी पियो और सुनो।

मनीष : अब बोलो भी भैया।

मां : तुम लोग बातें करो, मैं अभी आई।

मनीष : हूं, मां जी गई, अब तो बताओ।

महेन्द्र : हुआ यह कि तुम्हारे जाने के बाद अचानक ताऊजी आ गए।

मनीष : ताऊजी, अचानक, किस लिए?

महेन्द्र । मां ने उन्हें चिट्ठी लिखी थी न यह पूछने के लिए कि तुम्हारे इस चक्कर में उन्हें क्या करना चाहिए।

मनीष : तो फिर।

महेन्द्र : ठहर जा, सांस तो लेने दे.... हां तो ताऊजी ने आकर पहले तो मां जी से सारी पूछताछ की, फिर कहा कि अगर लड़के-लड़की का जोड़ अच्छा हो तो दोनों को शादी करने दो।

मनीष : ताऊजी और ऐसी बात।

महेन्द्र : अरे अभी और सुनो। मांजी और ताऊजी में बहस भी हुई। मांजी ने अपने वही घिसे हुए तर्क दिए, पर ताऊजी ने कहा—

पुरुष स्वर : (ताऊजी का) — "यह जाति-व्यवस्था की सदियों पुरानी परम्परा अब गल चुकी है। यह एक सुविधा की व्यवस्था थी, लेकिन इसकी आज के जमाने को कोई जरूरत नहीं। आज तो आदमी की पहचान जाति से नहीं, उसकी प्रतिभा से होनी चाहिए। प्रतिभा, गुण और चरित्र से कोई भी महान हो सकता है। सिर्फ चली आ रही ऊंची जातियों का कोई प्रतिभाशून्य व्यक्ति महान नहीं हो सकता......।"

महेन्द्र : बस, मां भी सोच में डूब गई। इस पर ताऊजी ने बताया कि वे सिर्फ सिद्धांत की बात नहीं कर रहे, इसे व्यवहार में भी ला रहे हैं।

मनीष : वो कैसे?

महेन्द्र : वो ऐसे कि उन्होंने अपनी बीच वाली बेटी नीता का विवाह ऐसे ही कुल में तय किया है, जिसे जाति-व्यवस्था के आधार पर नीच समझा जाता है।

मनीष : क्या? इज इट ए फैक्ट?

महेन्द्र : हन्ड्रेड एण्ड वन परसेन्ट। बस तो मां जी का मन भी बदलने लगा और कहने लगीं कि वो भी तुम्हारी शादी में शामिल क्यों नहीं हुई। रोई भी। पर अब ठीक है।

मनीष : और ताऊजी!

महेन्द्र : वो तो एक जरूरी काम से चले गए हैं। शाम तक आ जाएंगे और कह गए हैं कि बहू का घर में पूरा सम्मान होना चाहिए।

मांजी : (आते हुए) यह लो बहू : यह मंगलसूत्र मैंने कब से बनवा कर रखा हुआ था और महेन्द्र तू अभी तक यहीं खड़ा है। कार्ड कौन छपवाएगा। बाकी तैयारी कौन करेगा?

मनीष : ओ मां! यू आर ग्रेट।

मां : नहीं बेटा, यह तो मेरी समझ का फेर था। बड़े तो तुम हो जो इतनी हिम्मत से काम लिया और एक गलत बात के खिलाफ लड़े... ऐसा ही अगर हर नौजवान सोच ले और लड़ाई लड़े तो...।

(संगीत)।

—एफ-101, राजोरी गार्डन, नई दिल्ली-110027

चैत हे सखी सब वन

(पृष्ठ 12 का शेषांश)

कृष्ण और शिव के प्रसंगों से संबंधित चैता भी गाये जाते हैं।—

ए रामा चिरवा हरले दुशासन ए रामा धाव कृष्णा
द्रोपदी कहले पुकारी हो रामा धाव कृष्णा...

और,

शिवाजी के जलवा चढ़इबे हो रामा
खास नवमी दिनवां...

कुछ मिलाकर यही कहा जा सकता है कि चैती या चैता जनमानस की भक्ति-भावना और लोक संस्कृति की उल्लासमय, तो कहीं विषादमय अभिव्यक्ति है। चैती के बोल और स्वर श्रोताओं को एक अजीब-से उन्माद और उल्लास-विषाद से भर देते हैं। और क्यों न हो, चैती की अपनी एक अनूठी अदा जो है। नहीं?

—(बी-23/1 ए, सेक्टर 2, डी० आइ० जेड० एरिया, गोल मार्केट, नई दिल्ली-1

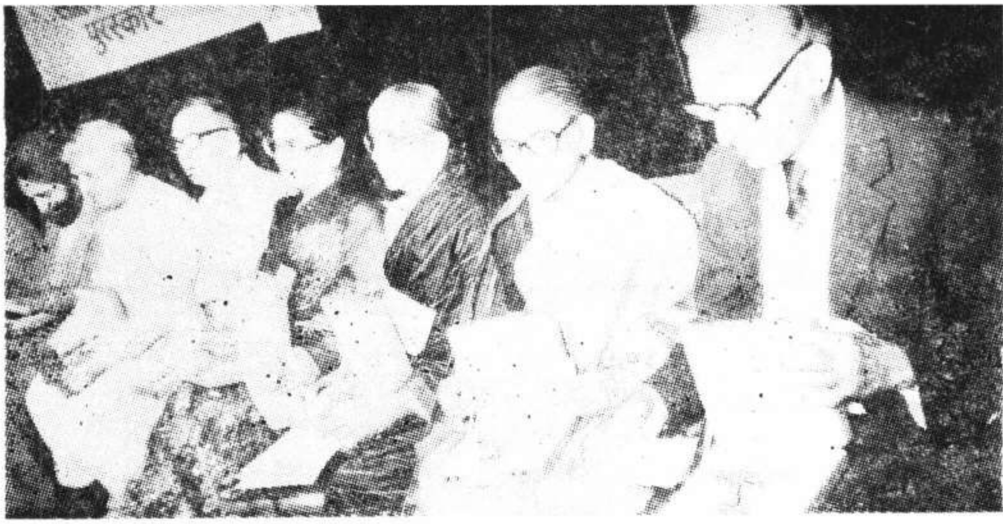

विशेष रपट

साहित्य अकादमी पुरस्कार समारोह

देश के सुप्रसिद्ध 22 साहित्यकारों को उनकी सर्वश्रेष्ठ रचनाओं के लिए विगत 22 फरवरी को राजधानी दिल्ली में आयोजित एक भव्य समारोह में 1982 के साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। समारोह में केवल 11 साहित्यकार उपस्थित हो सके।

गुजराती में श्री प्रियकांत मणियार को मरणोपरांत पुरस्कार दिया गया। हिन्दी के प्रसिद्ध व्यंगकार श्री हरिशंकर परसाई समेत तीन पुरस्कार विजेता साहित्यकार अस्वस्थता के कारण उपस्थित न हुए। अन्य ने उनके पुरस्कार ग्रहण किए। पुरस्कार विजेताओं में चार महिलाएं थीं।

श्री वेदबन्धु डोगरा "नूतन" को उनकी औपन्यासिक कृति "कैदी" के लिए पुरस्कृत किया गया था। श्री डोगरा ने अपना नाम पुकारे जाने पर उठकर अपना विरोध व्यक्त किया। उनका विचार था कि डोगरी की पूर्व पुरस्कृत रचनाओं के चयन मे गड़बड़ी हुई है। उन्होंने पुरस्कार की राशि पांच हजार रुपये नकद तथा ताम्र-पत्र लेने से इनकार किया।

प्रख्यात साहित्यकारों को नकद पुरस्कार और ताम्रपत्र से पुरस्कृत होते देखने एवं पुरस्कार ग्रहण करने के पश्चात के उनके उद्‌बोधन को सुनने के लिए फिक्की सभागार स्वयं अनेक लब्धप्रतिष्ठित साहित्यकारों समेत पुरुष तथा बहुत बड़ी संख्या में महिला श्रोताओं से भरा हुआ था।

साहित्य अकादमी के अध्यक्ष प्रोफेसर वी० के० गोकाक ने पुरस्कार दिए।

साहित्यकारों ने अपने संक्षिप्त भाषणों में अपने लेखकीय जीवन तथा विषय वस्तु को सामने रख कर अपने साहित्य चिंतन की झांकी श्रोताओं के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया।

इन भाषणों में जहां एक ओर असमिया की पुरस्कार विजेता श्रीमती इन्दिरा गामोनी रायसोम गोस्वामी की यह स्पष्टोक्ति थी कि केवल महिला लेखिका ही नारी मन को पूरी तरह से समझने में न्याय कर सकती है, वहीं बांगला की पुरस्कार-विजेता श्रीमती कमलदास की यह विश्वास भरी मान्यता भी गुंजित हुई कि लेखक की सत्य के लिए खोज केवल वर्तमान जीवन तथा अतीत जीवन के आंशिक वर्णन भर से समाप्त नहीं हो जाती बल्कि उसे तो हमारी निर्यात के कमल, अमरत्व के कमल, का चित्रण करना चाहिए। यह वह निर्यात है, जो संहार से परे है तथा अनंत सौंदर्य में निहित है। हिन्दी के लिए श्री हरिशंकर परसाई (पुस्तक: विकलांग श्रद्धा का दौर) पुरस्कृत हुए।

साहित्य अकादमी के सचिव डा० आर० एस० केलकर ने कहा कि पहले चौदह भाषाओं तथा अंग्रेजी में पुरस्कार देने का

□ प्रवीण उपाध्याय

विचार किया गया था। फिर इसमें सिन्धी और आगे चलकर मैथिली, मणीपुरी, राजस्थानी, नेपाली तथा कोंकणी एवं डोगरी का भी समावेश किया गया।

अकादमी के अध्यक्ष प्रो० गोकाक ने अपने भाषण में कहा कि पुरस्कारों के मूल में भारतीय साहित्य में अनन्त विविधता के बावजूद एकता की छिपी भावना को स्थापित और संपुष्ट करना है।

उन्होंने कहा कि इस वर्ष की पुरस्कृत रचनाओं में जहां महिला लेखिकाओं द्वारा महिलाओं के अधिकारों को सामने लाने की प्रवृत्ति मूल में है वहीं उपेक्षित सामान्यजन की आवाज

को ऊंचा उठाने की भी अनवरत कोशिश इन रचनाओं में सामने आई है।

जिन लोगों को पुरस्कार से सम्मानित किया गया उनके नाम इस प्रकार हैं— श्रीमती मामनी रायसम गोस्वामी (असमिया), श्रीमती कमला दास (बंगला), श्री देशबन्धु डोगरा "नूतन" (डोगरी), श्री प्रिय कान्त मणियार (गुजराती), श्री हरिशंकर परसाई (हिन्दी), श्री अरुण जोशी (भारतीय अंग्रेजी), श्री चंदुरग (कन्नड़), श्री लक्ष्मणराव सरदेसाइ (कोंकणी), श्री वी० के० एन० (मलयालम), श्री ई० दीनमणि सिंह (मणिपुरी), श्री प्रभाकर पांध्ये (मराठी), श्री एम० एम० गुरूगं (नेपाली), श्री गोपाल छोटेराय (ओड़िया), श्री गुलजार सिंह संधू (पंजाबी), श्री मूलचन्द प्राणेश (राजस्थानी), श्री पी० के० नारायण पिल्ले (संस्कृत), सुश्री पोपटी हीरानंदाणी (सिन्धी), श्री बी० एन० रामरुया (तमिल), श्रीमती ई० सरस्वती देवी (तेलुगु), श्री ज्ञाननंद जैन (उर्दू) और श्रीमती लिलि रे (मैथिली)।

साहित्य अकादमी पुरस्कार समारोह में वितरित श्री हरिशंकर परसाई के लिखित भाषण का अंश

मैं लेखक छोटा हूं, मगर संकट बड़ा हूं। एक तो बड़ा संकट मैं आचार्यों, समीक्षकों और साहित्य के नीतिकारों के लिए हूं, जिनके लिए वर्गीकरण जरूरी है और जो तय नहीं कर पाते कि इस आदमी को किस खाते में डाल दिया जाय। परेशान होकर इन्होंने मुझे व्यंग्य लेखक, व्यंग्यकार, व्यंग्यशिल्पी आदि कहना शुरू किया, तो कई दूसरे व्यंग्य लेखक और प्रबुद्ध पाठक उनके सिर चढ़ बैठे कि व्यंग्य को साहित्य की विधा भी मानो। दूसरे मैं संकट उनके लिए भी हूं जो राजनैतिक, धार्मिक, साम्प्रदायिक, सामाजिक, व्यावसायिक या किन्हीं दूसरे रूपों में मानव विरोधी हरकतें करते हैं और मैं जिसकी आलोचना करता हूं।

मैं दूसरे महायुद्ध की समाप्ति और भारत को स्वाधीनता प्राप्ति के समय पैदा हुआ लेखक हूं। अपने देश में आजादी के बाद मोहभंग होने में बहुत साल नहीं लगे। जिन मूल्यों के लिए हम आजादी की लड़ाई लड़े थे, उनका तेजी से मिटना मैंने देखा और भोगा है। व्यक्ति और समाज में भयानक विसंगतियां और अंतर्विरोध पैदा हुए। मानव सम्बन्ध टूटने लगे। एक वर्ग का अमानवीकरण हुआ। शोषण बढ़ा। गरीब और गरीबी रेखा के नीचे जीते हैं। काला धंधा, काला काम, काला धन, काला आचरण सम्मान पाने लगे। सदाचार और ईमानदारी मूर्खता करार दिये गये। समाज में दुराचरण पर धिक्कार की जो शक्ति थी, वह भी क्षीण होती गई। जिन दुष्कर्मों पर आत्मा विद्रोह करती थी वे चुपचाप स्वीकार किये जाने लगे। और कहीं टूटन, बिखराव मूल्यहीनता और अमानवीकरण। पुनरुत्थानवादी, प्रगति विरोधी पुरोगामी शक्तियों की प्रबलता, धर्मान्धता, भाग्यवाद, कर्मकाण्ड, साम्प्रदायिक द्वेष, फ़ासीवाद का लगातार बढ़ना, लोकतांत्रिक भावना का कमजोर होना, सर्वत्र शंका और अविश्वास और असुरक्षा...यही किकलांग श्रद्धा का दौर है।

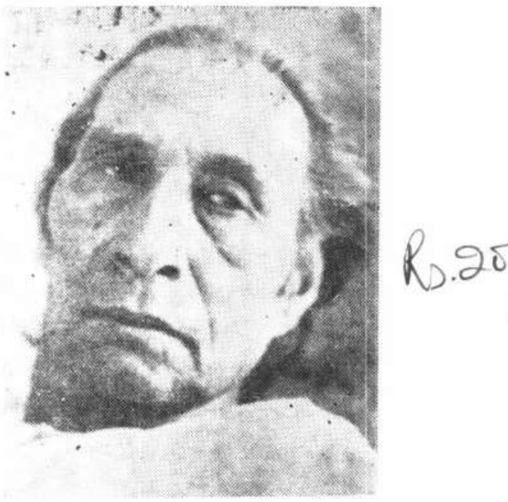

● हरिशंकर परसाई

मैं इसलिए लिखता हूं कि एक तो मैं स्वयं को, मनुष्य को, अपने समाज को और दुनियां को समझना चाहता हूं। मैं इसलिए लिखता हूं कि व्यक्ति और समाज आत्मसाक्षात्कार और आत्मालोचन करे और अपनी कमजोरियां, बुराइयां विसंगतियों, विवेकहीनता, न्यायहीनता त्याग कर जैसा वह है, उससे बेहतर बने। अंधविश्वासों, झूठी मान्यताओं, अवैज्ञानिक आग्रहों और आत्मघाती रूढ़ियों से मुक्त हो। वह न्यायी, दयालु, संवेदनशील हो। दासता और परमुखापेक्षिता से मुक्त हो। मानव गरिमा की प्रतिष्ठा हो। मुक्तिबोध ने कहा है—'जैसी दुनियां है उससे बेहतर चाहिये/सारा कचरा साफ करने को मेहतर चाहिए।' व्यंग लेखक सिनिक नहीं होता, न निराशावादी और न मानसिक रोगी। डाक्टर कैंसर के रोगी को बताए कि उसे कैंसर है, तो वह स्वस्थ मानसिकता का है। पर अगर कैंसर के रोगी को डाक्टर राग जैजैवंती सुनवाने लगे, तो डाक्टर जरूर मानसिक रोगों से ग्रस्त है। मैं जानता हूं, कई लेखक इस देश में कैंसर से से बीमार समाज को राग जैजैवंती सुनाते हैं।

वास्तव में मैं जो लिखता हूं, वह विनोद या हास्य नहीं है। वह व्यंग्य है और लोगों का कहना सही है कि वह कठोर होता है। पर इस व्यंग्य का उत्स कटुता में नहीं करुणा में है। व्यंग्य मानव सहानुभूति का बहुत ऊंचा रूप है। यह हास्य नही है, रुदन है, मगर अरण्य-रुदन नहीं है, मैं दुखी और बेचैन आदमी हूं। कबीर दास ने कहा है—

सुखिया सब संसार है खावै और सोवै।
दुखिया दास कबीर है जागै और रोवै॥

हरिशंकर परसाई का जीवन परिचय

हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ व्यंग्य-लेखक तथा उपन्यासकार श्री हरि शंकर परसाई का जन्म 1922 में उत्तरी मध्यप्रदेश के गांव जमानी में हुआ। उन्होंने हिन्दी में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्ति की और अनेक शालाओं तथा महाविद्यालय में अध्यापन करने के बाद 1957 में उन्होंने व्याख्याता पद से त्याग-पत्र दे दिया और स्वतंत्र लेखन करने लगे। वे 1947 से सृजनरत है और निबंध, कहानियां तथा लघु-उपन्यास भी लिखे हैं। वे कई हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में नियमित स्तंभ लिखते रहे हैं और फ़िलहाल उनके स्तंभ चार पत्रों में प्रकाशित हो रहे हैं जिनमें हिन्दी 'करेन्ट' तथा दैनिक 'जनयुग' उल्लेख्य हैं। 1955 से 1958 तक उन्होंने 'वसुधा' मासिक नामक पत्रिका का संपादन किया जिसने हिन्दी साहित्य में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। श्री परसाई कुछ अवधि त सागर विश्वविद्यालय के मुक्तिबोध सृजनपीठ में अतिथि अध्यापक रहे। वे कई प्रगतिशील संगठनों से जुड़ें हुए हैं और सम्प्रति मध्यप्रदेश प्रगतिशील लेखक संघ के अध्यक्ष हैं। अब तक उनकी तेईस पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और उनकी अनेक रचनाओं के भारतीय तथा विदेशी भाषाओं में अनुवाद हुए हैं।

'विकलांग श्रद्धा का दौर' का जो कुछ भी मानव-विरोधी है उसपर अथक प्रहार, सूक्ष्म व्यंग्य तथा प्रखर विद्रूप, जन-साधारण के प्रति गहरे अपनत्व तथा सादा किन्तु कारगर शैली के लिए हिन्दी साहित्य को एक अनुपम देन माना गया है।

सवालो दस्तावेज

● जयप्रकाश बागी

खुले हुए पिंजड़े में
भीगा हुआ पंछी
आंगन की
सीमा में कैद गृह लक्ष्मी आजाद है
खूबसूरत फरेब

सवाल.../सवाल होता है
सवाल बेहूदा हो सकता है/
बेतुका हो सकता है
मगर गलत नहीं होता
सवाल की छोटी-सी चिनगारी
भयानक आग की शक्ल में तब्दील होती है
जब/हम-जबाव जानते हैं और चुप रह जाते हैं

कोई जवान तिष्यरक्षिता
जब हम-उम्र सौतेले बेटे से
संभोग-प्रस्ताव कर देती है
हम इतना चीखते हैं-इतना
चीखते हैं

कि इतिहास के पन्ने सदियों थरथराते हैं
मगर/किसी बोते-उम्र अशोक के लिए
सिर्फ ये कह कर
चुप रह जाते हैं-ये ह्यूमन वीकनेस है।

सच तो ये है
परंपराओं के नाम जबरन वसूले गए
मूल्यों का नाम/हमने दिया है/ आदर्श
किसी भी एक लव्य का तप-त्याग
बगैर अंगूठा दिए अधूरा है

अंगूठा मत दिखाओ/
वरना आदर्शों का कंकाल बिखर जायेगा
एक तीर से/दो शिकार कैसे होंगे/अगर आहत
बगैर छटपटाये मर जायेगा...

डी 47/134, रामापुरा, बाराणसी

कहानी

स्वागत

महेशचन्द्र जोशी

दिल्ली जंकशन पर अपने छोटे से परिवार को लेकर गाड़ी से उतरते ही मैंने उड़ती दृष्टि चारों ओर डाली, इस विचार से कि कहीं घर का कोई सदस्य आया हो तो भटकना न फिरे। पर जब चार-पांच मिनट प्रतीक्षा करने के उपरान्त हमें कोई पूछने वाला दिखाई न दिया तो मैंने पोटलीनुमा बिस्तर को कंधे पर रखा, और पुराने ट्रंक को हाथ में पकड़ कर, पत्नी की ओर गम्भीरता से देखता हुआ बोला—'चलो'। पत्नी ने नाक भौं सिकोड़ कर उपेक्षा भरी दृष्टि से मेरी ओर देखा। फिर संजय को गोद में उठाकर तीखे स्वर में बोली—'चलिये'।

प्लेटफार्म से बाहर आकर कुछ देर तक आपस में बातचीत करने के बाद हमने एक रिक्शा लिया और चांदनी चौक में स्थित अपने मकान में पहुंच गए। पूरे घर में कुछ देर के लिए एक हलचल सी मच गई। पिताजी व छोटे भाई—बहन हमें घेर कर बैठ गए। अपना-अपना दुःख-दर्द सुनाने लग गये हमारे दिलों में भी मां के हमारे बीच न होने का दुःख उभर आया—यद्यपि वे हमारे बीच से करीब एक वर्ष पहले ही सदा-सदा के लिए उठ गई थीं। उस उदासी के माहौल में मैंने अपना ट्रंक खोला। एक खुशी की आभा सबके उदासी से भरे चेहरों पर झलकने लगी। लेकिन जब मैंने शोभना की शादी के लिए, गुलाबी कागज में सुन्दरता से लिपटा, लाल रिबन से बंधा, एक पैकेट खुशी-खुशी बाहर निकाला और यह कहकर कि शोभना को हमारी ओर से यह एक छोटी सी भेंट है, ट्रंक बन्द कर दिया तो सब भाई बहनों, यहां तक कि पिताजी का चेहरा भी उदासी के बोझ से लटक गया। मुझे आश्चर्य हुआ। फिर थोड़ी देर बाद जब धीरे-धीरे सबने वहां से खिसकना शुरू किया तो मैं असमंजस में पड़ गया। संजय के 'तोती खोंऊंगा। मम्मी मैं तोती खाऊंगा,' चिल्लाने पर मुझे चेतना सी आई। मैंने पलकें उठाई तो देखता ही रह गया। वहां उदास बैठी पत्नी व रोते हुए बच्चे के अतिरिक्त कोई न था।

'शोभना।' अधिकार भरे स्वर में मैंने पुकारा।

कोई उत्तर ना आया। दुबारा पुकारने पर शोभना आई। बोली—'कहिये भइया क्या बात है?'

'अरे शोभना देख तो सही यदि रोटी वगैरा तैयार हो गई है तो संजय को ला दे।'

'संजय बेटे, बस रोटी बनने वाली है। अभी दाल पक रही है; संजय के सिर पर हाथ फेरती हुई शोभना प्यार भरे स्वर में बोली—' सबसे पहले तुझे ही रोटी दूंगी।' फिर वह हम दोनों की ओर मुड़कर गम्भीरता से बोली—'हमें तो आज आप लोगों के आने की याद ही नहीं रही। नहीं तो....।'

'मैंने तो सप्ताह भर पूर्व ही आने की बात लिख दी थी। ...खैर कोई बात नहीं।'

शोभना चली गई। पत्नी ने फुंफकारते हुए जल्दी से बिस्तर

खोला और सफर से बची हुई रोटी, एक पुराने कपड़े से निकाल कर संजय के हाथ में थमा दी। वह बिना शिकायत के उस रोटी को चबाने लगा। मन में आया कि संजय के हाथ से रोटी छीन कर कुत्ते को डाल दूं, लेकिन खामोशी से बाहर निकल गया।

दोपहर का भोजन करने के बाद से ही मैं शोभना की शादी की तैयारी में लग गया। पिताजी जैसा आदेश देते वैसा करता जाता।

उस दिन, काफी रात बीते मैं किसी कार्य को पूरा करके घर लौटा था कि बैठक के समीप आते-आते एक तीर कानों पर लगा। पिता जी कह रहे थे कमलेश तो भूखा है। क्या लायेगा वह तुम लोगों के लिये...?

मैं जहां का तहां खड़ा रह गया।

पिताजी का कहना जारी था—'वह शोभना के लिए दो ढाई सौ की साड़ी ले आया तो क्या हुआ ?"

बंद दरवाजे के बाहर खड़े-खड़े मेरी आंखों के सामने पत्नी का एकमात्र मामूली सा हार घूम गया, जिसे गिरवी रखकर मैं एक सेठ से छः सौ रुपये उधार लाया था। सवा दो सौ की साड़ी ली, बाकी किराये व लेन-देन के।

पिता जी आगे कहते गए—'देखना, अब तुम्हारा दिलदार भाई भी आयेगा। इतना लायेगा वह तुम सबके लिये कि तुम पूरी तरह संतुष्ट हो जाओगे।'

'पहले तो कभी कोई विशेष चीज नहीं लाए डैडी व भाई साहब हम लोगों के लिये।' किक्की उदासी भरे शब्दों में बोला।

'अरे इस बार मैंने खूब डांट रक्खा है उसे।....तुम सब उन लोगों का पूरा-पूरा ध्यान देना।

'मैंने अब ज्यादा देर वहां खड़ा रहना ठीक नहीं समझा। दरवाजा खटखटा दिया। दरवाजा खुला। वहां उपस्थित पिता-जी व भाई-बहनों के चेहरों पर, फुल स्पीड से चल रहे छत के पंखे के नीचे बैठकर भी पसीना चमकने लगा। मैंने पिता जी को अपने कार्य की रिपोर्ट दी और भीतर खुलने वाले दरवाजे की चिटकनी खोलकर दूसरे कमरे में चला गया। कमरा खाली था। मुझे लगा कि जैसे मेरा जीवन भी एक साधारण नौकरी लगने के बाद से ऐसे ही खाली है।...तब से परिवार वालों से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। कोई अस्तित्व नहीं। हक नहीं। अधि-कार नहीं। बस एक मशीन की तरह कार्य कर रहा था मैं। जैसा बटन दबता, कार्य करता जाता। आखिर चार दिन बाद बहन की बारात आने वाली थी।

इधर मैं अपने फर्ज को ठीक से निभाने में सुख का अनुभव कर रहा था, उधर पत्नी मौका पड़ने पर नाक-भौं सिकोड़कर टोके बगैर न रहती। एकान्त में कह ही देती—'कहां ला पटका। ना समय पर खाने का पता, ना पीने का। संजय का शरीर आधा हो गया है, और तुम्हें देखकर लगता है जैसे किसी ने बचा-खुचा मांस भी तुम्हारे शरीर से नोच खाया है। मेरी तो बात ही छोड़ो।...

'देखो इस तरह विष उगलने से कुछ नहीं होता। जिस काम को सम्पन्न करने आये हैं, वह अच्छी तरह हो जाए, तभी यात्रा सफल समझो।' मैं समझाता। लेकिन पत्नी फिर वार करती—'हां। हां। विष तो मैं ही उगलती हूं, तुम्हारे घर वाले तो अमृत की वर्षा करते हैं।' इस तरह की बहस में मेरा मन खिन्नता से पूरी तरह भर जाता। फिर भी सोच समझ कर कार्य करता हुआ मैं अपने फर्ज को पूरी तरह तो नहीं, हां, काफी हद तक निभा पा रहा था।

अब दो दिन शोभना की बारात आने में रह गये थे। दोप-हर में भाई साहब का एक्सप्रेस टेलीग्राम मिला...'कल सुबह की गाड़ी से हम दिल्ली पहुंच रहे हैं।' तार क्या था तूफान था। तूफ़ान। जिससे पूरा घर हिल गया। पिता जी का सब भाई-बहनों को आदेश मिला कि पूरे घर को एकदम चमका दो। ...सबको सुबह जल्दी उठाकर तैयार होना है।...'घर में एक-दम एक नई हलचल मच गई। रात को काफी समय तक छोटे भाई-बहन रसोई घर में बैठकर भाई साहब व उनके परिवार के स्वागत के विषय को लेकर, बातें करने लगे। शोभना बोली—'अरी अचला' तुझे पता है कि जूही को क्या अच्छा लगता है ?'

'हां क्यों नहीं। जूही को सैंडविच अच्छे लगते हैं।'

'करेक्ट।....बिल्कुल ठीक। और भाभी जी को ?

'मैं बताऊं दीदी ?'

किक्की बोल पड़ा।

'बता ?'

'मीट का पुलाव।'

'चल हट। मैं सुबह के ब्रेक फास्ट की बात कर रही हूं, तू लन्च डिनर की बात करने लगा।'

'नाश्ते में भाई साहब व भाभी जी के लिए अन्डों का हलुआ चलेगा' अचला बोली।

'गुड आइडिया।' शोभना बोली...' अब शायद दस बजने को होंगे। सोने की तैयारी करनी चाहिए।'

'झंडियां पूरी कौन करेगा ?' किक्की कुछ तेज स्वर में बोला।

'यह तुम जानो।...मैं सोचती हूं कि गाड़ी सुबह करीब नौ बजे आती है। सैंडविच सामने के होटल से मंगवा लेंगे। अंडों का हलुआ घर में बना लेंगे।...

'क्यों अचला? ठीक रहेगा न ?'

'आइडिया तो गलत नहीं है दीदी।'

'तो ठीक है।' शोभना बोली। फिर दो तीन पल रुककर किक्की की ओर देखती हुई वह बोली—' देख भैय्या किक्की, यह तेरी ड्यूटी रहेगी कि सुबह उठते ही होटल वाले से एक दर्जन अंडे ले आना और उससे कहना कि सैंडविच तैयार रखे।...समझा ?'

'हां...समझा गया।'

सब इधर-उधर बिखर गए।

ये सब बातें थोड़ी देर पहले, संजय की तबियत अचानक खराब हो जाने के करण, दिल की बातें कहीं घूम कर आने का विचार छोड़कर, हम तीनों के चुपचाप छत पर चले जाने के कारण, सुनने को मिली। संजय को मोटा कपड़ा उढ़ाकर पत्नी मुझे खामोशी से मुंडेर तक ले आई थी। फिर तो हम उस वार्तालाप को ऐसे सुनने लगे, जैसे एक देश वाले युद्ध के समय दुश्मन देश की खबरें सुनते हैं।

भाई-बहनों का वार्तालाप खत्म होते ही पत्नी ने मेरी एक बांह पर चूंटी काटते हुए उपेक्षा भरे स्वर में कहा—'सुन लिया?'

'मामूली नौकरी मिली तभी से सुनता आ रहा हूं। लेकिन...'

पत्नी ने एक हाथ की अंगुली अपने मुंह पर रखकर मुझे आगे बोलने से रोक दिया और दूसरे हाथ की अंगुली से सीढ़ियों की ओर ऐसे इशारा किया, जैसे कह रही हो कि कोई आ रहा है। वास्तव में ही दो पल पश्चात् अचला हमारे सामने खड़ी हो गई। एक दो पल हमें आश्चर्य भरी दृष्टि से निहार कर बोली—'अरे आप लोग यहां बैठे है। घूमने नहीं गए?'

'संजय की तबियत खराब-सी लगी। फिर जाना ठीक न लगा। ऊपर आकर बैठ गए।...बैठो।' मैं बोला।

'हम तो सोच रहे थे आप लोग चले गए होगें।' कहते-कहते अचला नीचे उतर गई।

'देखा, संजय की तबियत भी नहीं पूछी।' पत्नी दांत पीसती हुई दबे स्वर में बोली।

पत्नी के उन आग में बुझे शब्दों को सुनकर मन में आया कि या तो अपना सिर फोड़ लू या फिर पत्नी का फोड़ दूं। पर धीरे से यही कह पाया—'गरीब का कोई अपना नहीं होता।

पत्नी ने ऐसे गर्दन हिलाई जैसे कह रही हो कि अभी हुआ ही क्या है, ये तुम्हें पूरा निचोड़ में कर ही दम लेगे।

प्रातः हुआ। एक नई हलचल सी मच गई घर में। सब खुशी-खुशी अपने-अपने कार्यों में लगे हुए थे। पिताजी भी शादी की दौड़-धूप रोक कर बार-बार घर का निरीक्षण कर रहे थे, जैसे इस्पेक्टर के आने की सूचना पाकर किसी स्कूल का हैड-मास्टर करता है।

गाड़ी आने में अभी एक घंटा बाकी था, लेकिन पिताजी मुझे, अचला व किक्की को साथ लेकर रेलवे जंकशन की ओर चल पड़े।

पौन घंटा बाद पंजाब मेल आया। फिर भी किसी के चेहरे पर कोई शिकन न थी। सबने फर्स्ट क्लास के कम्पार्टमेन्ट में खड़े भाई साहब को हाथ मिलाकर अभिवादन किया।

गाड़ी रुकने तक हम सब भीड़ को चीरते हुए उनके समीप पहुंच गए थे। मेरे अतिरिक्त सबने उनसे हाथ मिलाया, पर जब मैंने उनके पैर छुए तो सब धीरे से हंस पड़े। हंसी का दौर समाप्त होते-होते पिताजी बड़ी आत्मीयता से बोले—'बेटा, रास्ते में कोई तकलीफ तो नही हुई तुम लोगों को?'

नहीं डैडी। हमने पूरा कम्पार्टमेन्ट रिजर्व करा लिया था?'

'ठीक किया, बेटा।'

मेरा ध्यान अन्दर फर्स्ट क्लास की लम्बी-चौड़ी सीट पर गया। तब याद आया अपना सफर। उस दिन हमारे सेकण्ड क्लास के कम्पार्टमेन्ट में तिल रखने को भी जगह न थी। बस अपने ही बिस्तर व ट्रंक पर हमें ऐसे बैठे हुए आना पड़ा था, जैसे किसी ने हमें सांचे में ढाल दिया हो।.. दो कुलियों को इशारा कर भाई साहब नीचे उतर गए। तभी अचला बोली—'भाभी और जूही...।'

'भाई साहब ने मुसकुराते हुए कहा....'भीतर।'

पलक झपकते ही दोनों भाई-बहन भीतर घुस गए। और दो-चार पल पश्चात् भाभी, जूही को गोद में लिये अचला और किक्की कम्पार्टमेन्ट से उतरे।

'सामान कहां है?' पिताजी आश्चर्य से बोले।

कुली ला रहे हैं।' भाई साहब हंसी दबाने का असफल प्रयत्न करते हुए बोले।

दो कुलियों को चार सूटकेस, दो होलडाल व अन्य खूब-सूरत चीजें लेकर उतरते देखा तो मेरी आंखों के सामने अपना पोटलीनुमा बिस्तर व पुराना ट्रंक घूम गया। मन में आया कि अब दो सगे भाईयों में इतनी असमानता है तो दूसरों से क्यों न हो? क्यों हम समानता का गीत गाते हैं?'...

कुलियों के आगे—पीछे चलने पर मुझे अपने वे क्षण भी याद आ ही गए, जब मैं अपने परिवार को लेकर करीब-करीब इसी समय यहां उतरा था। कुछ देर इन्तजार पर भी कोई न आया था।

चलते-चलते पिताजी ने जूही को अचला की गोद से लेते हुए पूछा...

'कैसे हो बेटा?'

'ओ के।'

'अरे तुम तो अंग्रेजी भी बोलते हो।'

'इंगलिश स्कूल में पढ़ती हूं। हिन्दी बोलते ही वहां फाइन लग जाता है।'

'खूब। पिताजी आश्चर्य से बोले।

'मम्मी और डैडी भी मुझे घर पर अंग्रेजी ही पढ़ाते हैं। आपको हमारे घर पर हिन्दी की एक भी किताब न मिलेगी जी।' जूही और ज्यादा गर्व से बोली। सब गर्व से हंस पड़े, पर मैं गम्भीरता पूर्वक कनखियों से, अंग्रेजी लिबास में लिपटी, अपनी उस पांच वर्षीय भतीजी को कुछ देर तक देखता रहा। फिर मैंने एक उड़नी दृष्टि भाई साहब व भाभी पर भी डाली,

जो इंगलिस्तान व हिन्दुस्तान के फैशनों के मिक्सचर की दो बोतलें लग रहे थे।

कुछ देर बाद हम सब प्लेटफार्म से बाहर आए। दो टैक्सियों में बैठकर कुछ ही देर में घर पर पहुंच गये।

दरवाजे पर खड़ी शोभना ने लपक कर टैक्सी में से जूही को गोद में ले लिया और भाभी का हाथ थामे भीतर की ओर ऐसे चल पड़ी, जैसे नई दुलहन को घर में प्रवेश कराया जा रहा हो। उनके पीछे-पीछे छोटे भाई-बहन भी हो लिये।

थोड़ी देर में मैं भी कुछ सामान पकड़े हुए पिताजी व भाई साहब के साथ ड्राइंग रूम में आया। पीड़ा से मर गया, जब देखा फर्श पर बैठा संजय छोटी सी गोल मेज पर बैठी जूही को टुकर-टुकर देख रहा है, जैसे तीन वर्ष की उमर से ही गरीबी व अमीरी के फर्क को तोल रहा हो। मुझे एक धक्का सा लगा, फिर पत्नी को वहां न देखकर क्रोध भी उमड़ पड़ा मेरा। पर खामोशी से हर कमरे में देखता हुआ रसोई घर में पहुंचा। वहां वह रोटी बना रही थी। दबे क्रुद्ध स्वर में बोला—'यहां क्या कर रही हो तुम? भाई साहब व भाभी जी आ गए हैं।

'मैं क्या करूं? मुझे तो हम तीनों के लिए भोजन बनाने का हुक्म है?' क्रोध से, पर दबी जुबान से पत्नी बोली।

'बाकी क्या खायेंगें?'

'होगा कोई मीट पुलाव वगैरा।

'तो तुम भाई-भाभी से तो मिल लो।' इस समय मेरा स्वर कुछ ज्यादा तीखा हो गया था।

पत्नी ने हाथ में पकड़े चिमटे को नीचे पटका। मन ही मन बड़बड़ाती हुई उठी। मैली सी साड़ी से हाथ पोंछे। नाक-मुंह सिकोड़कर मेरे पीछे-पीछे चल पड़ी।

हमारे ड्राइंग रूम में पहुंचते ही संजय चीख उठा...'तोती खाऊंगा। मैं भी तोती खाऊंगा मम्मी।' उसका इशारा जूही के हाथ में पकड़े सैंडविच की ओर था।' 'इसमें अन्डा होता है।'' कहकर मैंने, संजय को गोद में ले लिया।

पर वह उसके लिये जिद पकड़ता रहा। कुछ देर तक सबकी ओर से संजय के लिये सहानुभूति पूर्ण वाक्यों की भड़ी लग गई। इस बीच भाई साहब ने कंडी में से बिष्कुट का एक खुला पैकेट निकालकर उसमें से दो-तीन बिस्कुट संजय के हाथ में थमा दिये थे। पत्नी ने अभिवादन की रस्म अदायगी कर दी थी और शोभना उठ कर चली गयी थी। फिर पत्नी भी कुछ देर वहां ठहर कर खिसक गई थी। बचे हुए हम लोग इधर-उधर की बातें कर शादी के लिए शेष तैयारी पर बिचार करने लगे।

अभी हमारी बातें चल ही रही थीं कि शोभना भाई साहब व भाभी जी के लिये एक बड़ी प्लेट में नाश्ता ले आई। छोटे भाई-बहन वहां से खिसक गए। पिताजी पहले से ही खाने-पीने का सामान लेने के लिये गए हुए थे। मुझे वहीं बैठा हुआ देखकर शोभना हसते हुए बोली—'आप तो वेजिटेरियन हैं न।... यह तो नानवेजिटेरियन...।

'तो क्या हुआ? हम तीनों तो दाल रोटी के साथी हैं। जब तैयार हो जाए बुला लेना।'

सब हंस पड़े।

कुछ देर बाद पिताजी खाने के लिये ढेर सा सामान ले आए। चूल्हा तो गरम था ही, दो स्टोव एक साथ और जल उठे। तरह-तरह की भोजन सामग्रियों की तैयारी से घर महक उठा।

भोजन की तैयारी के बीच भाई साहब ने बैड रूम में पलंग पर लेटे-लेटे भाभी से बादामी रंग का ठंडा सूट निकालने को कहा। यह खबर कुछ ही पलों में बेतार की तरह घर के सब सदस्यों के कानों में जा पहुंची। अधिकतर अपना-अपना काम छोड़-छोड़ कर धीरे-धीरे बल्ब पर मंडराने वाले पतंगों की तरह उन दोनों के इर्द-गिर्द मंडराने लगे।

पहला सूटकेस खोलते भाभी बोली—'अरे इसमें तो साड़ियां हैं। दूसरा खोलकर माथे पर हाथ मारती हुई बोली—' ओ हो इसमें जूही के कपड़े व मेरे ब्लाउज हैं। अब उन्होंने एक-एक कर अन्य दोनों सूटकेस भी खोल दिये। फिर एक में से बादामी रंग का सूट निकालकर चारों को बन्द कर दिया। उस समय सब भाई बहनों की दशा ऐसी हो गई जैसे उनके पास से सांप गुजर गया हो।

'क्यों रे राजेश क्या तुझे मेरा पत्र नहीं मिला था?'

अचानक आए इस क्रोध भरे स्वर ने हम सबको चौंका दिया। घूम फिर कर हमारी दृष्टि जब कमरे के बाहर खुली खिड़की के पास तमतमाए चेहरे को लिये खड़े पिताजी पर पड़ी तो पल भर को हम सब घबरा गए। पर भाई साहब निडरता से अध लेटे से बोले ' मिला।'

'तो फिर तूने उस पर अमल नहीं किया।'

दो तीन पलों को तो भाई साहब एकदम गम्भीर हो गए। उनके चेहरे पर क्रोध की लालिमा झलक आई, पर फिर जैसे क्रोध के घूंट को गटककर बोले...'आप तो जानते ही हैं डैडी कि जिस इन्सान की जितनी आमदनी होती है वैसा खर्च भी होता है उसका। फिर पैसा बचे कहां से?...

पिताजी का चेहरा और तमतमा गया। भाई साहब कहते गए यदि किसी चीज की कमी पड़ रही है तो मैं यहां चांदनी चौक से खरीदकर शोभना को प्रजेन्ट के रूप में दें दूंगा। यदि ज्यादा ही चीजों की कमी पड़ रही है तो मैं यहीं स्थित अपने दोस्त की दुकान से ठीक दाम पर दिलवा दूंगा। पैसे कभी भी चुका देना उसे।'

'बस। बस। मुझे किसी चीज की जरूरत नहीं। किसी चीज की जरूरत नहीं। गरज कर कहते हुए पिताजी तेजी से बरामदे की ओर बढ़ गये। तभी रसोई घर से किसी चीज के जलने का एक बदबूदार झोंका वहां आया।

अनुसंधानकर्ता, राजस्थान राज्य अभिलेखागार
बीकानेर 334001

पुस्तक - समीक्षा

नेताजी सम्पूर्ण वाङ्मय

—जयवंशी झा

भारत सरकार के प्रकाशन विभाग ने 'संपूर्ण गांधी-वाङ्मय की तरह नेताजी संपूर्ण वाङ्मय' के प्रकाशन का शुभारंभ करके श्रेयस्कर कार्य किया है। नेताजी वाङ्मय दस खंडों में होगा। आलोच्य पुस्तक इसका प्रथम खंड है। यह खंड तीन भागों में विभक्त है। प्रथम भाग के दस अध्यायों में नेताजी के पारिवारिक इतिहास, जन्म, शिक्षा एवं धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक आस्थाओं पर प्रकाश डाला गया है। यह सब सुभाष चन्द्र बोस ने स्वयं लिखा है।

दूसरे भाग में उनके 70 पत्र संकलित है जो उन्होंने 1912-21 के बीच लिखे थे। ये पत्र उन्होंने अपनी माता, भाई मित्रों तथा अन्यों को लिखे थे। उनके आठ पत्र वे हैं जो उन्होंने इंडियन सिविल सर्विस से त्यागपत्र देने के निर्णय पर अपने बड़े भाई शरत चन्द्र बोस और भारत सचिव को लिखे थे।

तीसरे भाग में वंश-वृक्ष, जानकी नाथ बोस का रेखाचित्र, कुछ अन्य लेख, रिपोर्ट और नेताजी एवं उनके परिवारजनों के दुर्लभ चित्र हैं।

नेताजी रिसर्च ब्यूरो (कलकत्ता) ने अनेक व्यक्तियों और देश-विदेश की संस्थाओं के सहयोग से इस ग्रन्थ को तैयार किया है।

नेताजी के मन में बाल्यावस्था से ही धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक अंतर्द्वन्द्व रहा। वे आत्मिक शांति के लिए महात्मा बुद्ध की तरह, गुरू की खोज में भटकते रहे। अंत में रामकृष्ण परम हंस और स्वामी विवेकानंद के सानिध्य में उन्हें शांति मिली।

नेताजी कहते हैं :—"रामकृष्ण परमहंस इस बात को दोहराया करते थे कि आत्मानुभूति के लिए त्याग अनिवार्य है और संपूर्ण अहकार शून्यता के बिना आध्यात्मिक विकास असंभव है। यही उपनिषदों का सार है।"

विवेकानंद के बारे में वे लिखते हैं :—"मैं उस समय मुश्किल से पंद्रह वर्ष का था जब विवेकानंद ने मेरे जीवन में प्रवेश किया।...विवेकानंद अपने मित्रों में और अपने उपदेशों के जरिये मुझे एक पूर्ण विकसित व्यक्ति लगे।" नेताजी आगे लिखते हैं : —"हमारे बीच आशा की देवी हमारी बुझी हुई आत्माओं को फिर से आलोकित करने के लिए और हमारे आलस्य को झकझोरने के लिए आ चुकी है। उसका आविर्भाव स्वामी विवेकानंद के रूप में हुआ है।"

सुभाषचंद्र बोस भारत माता की गुलामी की बेड़ियां काटने के लिए छात्रावस्था से ही उत्सुक थे। पिता और बड़े भाई के आग्रह पर वे इंगलैंड जाकर आई० सी० एस० तो हो गये लेकिन अंग्रेजों की गुलामी करना उन्हें कतई पसंद नहीं था। वे देश की आजादी के यज्ञ में अपने जीवन को होम कर देना चाहते थे। इंडियन सिविल सर्विस से अपने त्यागपत्र के बारे में अपने बड़े भाई को कितना मार्मिक पत्र लिखा था :—आपने मेरे लिए वह सब कुछ किया है जो आप कर सकते थे और जिसकी मैं आपसे आशा कर सकता था।....मैं महसूस करता हूं कि मेरा इस्तीफा देने का प्रस्ताव कम से कम निर्दय तो दिखता ही है। इस प्रस्ताव का यह अर्थ होगा कि मेरे लिए जो दस हजार रुपये खर्च किये गये हैं उसका कोई भी प्रतिलाभ नहीं होगा। आपको यह मानकर चलना होगा कि मेरे लिए जो पैसा खर्च किया गया है वह मातृभूमि के चरणों में अर्पित किया गया है और उससे किसी प्रतिफल की आशा नहीं करनी चाहिए।"

आलोच्य खंड का अनुवाद प्रयाग नारायण त्रिपाठी ने किया है। अनुवाद की भाषा में सरलता, सहजता और गतिशीलता है। इस ऐतिहासिक पुस्तक के सभी खंडों के प्रकाशन के बाद सुभाष चन्द्र बोस के जीवन, कार्यों और विचारों का सही रूप में परिचय मिल सकेगा।

इस प्रकाशन के लिए भारत सरकार का प्रकाशन विभाग साधुवाद का पात्र है।

नेताजी सम्पूर्ण वाङ्मय : लेखक : जयवंशी झा, प्रकाशक : प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, पटियाला हाउस, नई दिल्ली, मूल्य : 22 रुपये, पृष्ठ : 256,

भारत का मुक्ति संघर्ष और रूसी क्रांति

'भारत का मुक्ति संघर्ष और रूसी क्रांति' नामक प्रस्तुत पुस्तक में वरिष्ठ पत्रकार श्री विश्वमित्र उपाध्याय ने 1930 से लेकर 1947 तक की घटनाओं तथा भारतीय जनता के विभिन्न आंदोलनों, विचारों व अन्य तमाम घटनाक्रमों पर विस्तार से प्रकाश डाला है। इससे पूर्व इसी नाम से लेखक की पुस्तक के दो खंड प्रकाशित हो चुके है जिनमे 1905 से 1921 और 1922 से 1929 तक की घटनाओं का विस्तृत अध्ययन किया जा चुका है। उसी अध्ययन को आगे बढ़ाते हुए लेखक ने भारत को स्वाधीनता प्राप्त होने तक की घटनाओं को अपने अध्ययन का विषय बनाया है।

लेखक ने ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की लूट-खसोट, शोषण और अत्याचारों के खिलाफ जनता के व्यापक संघर्षों का विवेचन किया है। रूस में महान लेनिन के नेतृत्व में 1917 की अक्तूबर क्रांति ने सोवियत संघ में मजदूर किसानों का राज स्थापित किया।

अक्तूबर क्रांति और सोवियत संघ की समाजवादी व्यवस्था का भारतीय मुक्ति संग्राम पर भी असर पड़े बिना नहीं रहा। कई क्रांतिकारी सोवियत संघ गये। भारत के मुक्ति संघर्ष को लेनिन और 'कोमिन्तर्न' ने समर्थन दिया। भारत के मुक्ति संघर्ष में अपनी-अपनी शक्ति और योग्यता के अनुसार कांग्रेस, कम्युनिस्ट, सोशलिष्ट, क्रांतिकारियों तथा जनसंगठनों ने योगदान दिया। इन सब के योगदान से ही भारत स्वाधीन हुआ।

प्रस्तुत पुस्तक के आठ अध्यायों में लेखक ने 1930 से 1947 तक के प्रमुख राष्ट्रीय आंदोलनों, मजदूरों-किसानों के संघर्षों तथा कांग्रेस, कम्युनिस्ट, कांग्रेस-समाजवादी और क्रांतिकारी दलों तथा आजाद हिन्द फौज के नेतृत्व में किये गये आंदोलनों व संघर्षों का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में विवेचन किया गया है। इसमें स्पष्ट किया गया है कि भारतीय राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन मूलतः साम्राज्यवाद विरोधी, सामंतवाद विरोधी राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष था और यह साम्राज्यवाद विरोधी विश्व क्रांतिकारी आंदोलन का अभिन्न अंग था।

लेखक ने अपनी पुस्तक को विभिन्न दस्तावेजों, समाचार-पत्रों और पत्र-पत्रिकाओं के विभिन्न लेखों के उद्धरणों तथा अनेक क्रांतिकारियों-स्वतंत्रता सेनानियों से भेंट-वार्ताओं के माध्यम से अधिक प्रामाणिक बना दिया है। संदर्भ ग्रंथ के रूप में यह पुस्तक बहुत महत्वपूर्ण है तथा स्वाधीनता आंदोलन के बारे में वैज्ञानिक दृष्टि से जानने का अवसर प्रदान करती हैं।

भारत का मुक्ति संघर्ष और रूसी क्रांति; लेखक: विश्वमित्र उपाध्याय, मूल्य: 20 रुपये, प्रकाशक: नवयुग पब्लिशर्स, चांदनी चौक, दिल्ली

रोहित, ~~ए-67, अशोक विहार~~
~~दिल्ली-110052~~

C-8/97A लॉरेंस रोड दिल्ली-35

अचेतन के कुहासे में यथार्थ की किरण

डा० वीरेन्द्र शर्मा

समीक्ष्य उपन्यास मुख्यतः एक ऐसा आत्मचरितात्मक उपन्यास है जिसमें भारत के मुक्ति आन्दोलन का इतिहास कथा-नायक शंकर के दर्पण में प्रतिविम्बित होता है। चेतना-प्रवाह का अनुसरण करता हुआ यह उपन्यास कभी अचेतन मन की अथाह, अतल गहराइयों का स्पर्श करता हुआ विगत स्मृतियों को उद्घाटित करता है तो कभी वर्तमान के परिवेश में विभिन्न घटना-चक्रों के घातों-प्रतिघातों की प्रतिक्रियाएं अंकित करता है। इस प्रक्रिया में चित्त-पटल में अनेकों आयाम पाठक के समक्ष अनायास ही अनावृत्त हो जाते हैं। जैसा उपन्यासकार ने स्वयं लिखा है— "इस उपन्यास में शंकर की कहानी मुख्यतः अपने नवीन गुरु-स्वामी प्रसानपाद के पथ-प्रदर्शन में उसकी नई जीवन-यात्रा की कहानी है, और स्वामी प्रसानपाद कल्पित नहीं यथार्थ व्यक्ति हैं। यहां यह तथ्य स्मरणीय हैं कि प्रस्तुत उपन्यास से पहले लेखक के दो और उपन्यास— "बारूद और चिनगारी" तथा "जय-पराजय" भी उसी कथानक से सम्बद्ध थे जो समीक्ष्य कृति का प्रतिपाद्य है—

उपन्यास का प्रारम्भ होता है शंकर की डायरी के कुछ अंशों से इसमें पहली प्रविष्टि 7 दिसम्बर, 1943 की है जिसमें पुत्र रंजन की मृत्यु के आघात से उत्पन्न मानसिकता का चित्रण है। इसके पश्चात् क्रमशः 19 दिसम्बर को लेखक स्वीकार करता है कि वर्तमान की घटनाएं लिखने के स्थान पर वह घूम-फिर कर आ गया अतीत पर ही...इसके बाद उसे स्वामी जी की बात याद आई— "अपने भावों को दबाना नहीं— दु:ख आवे तो रुलाई को रोकना नहीं"— और इसके पश्चात बन्द कोठरी में शंकर के चित्त का विश्लेषणात्मक स्वरूप पाठकों के समय उद्घाटित होता है— जो भी उसके मन में आता गया वह कहता चला गया — सब कुछ बेतरतीब— असम्बद्ध चित्र — इस प्रकार पाठक नायक के मन के अंधेरे में झांककर सत्य के विविध सूत्र पकड़ लेता है। शंकर के माध्यम से लेखक ने बताया हैं कि "हमारी आज की अधिकांश भावात्मक क्रियाओं या प्रतिक्रियाओं का मूल स्रोत हमारे शैशव में ही रहता है। आज की ये प्रतिक्रियाएं प्रतीकात्मक ही होती हैं.... "शंकर के दो जीवन—अतीत और वर्तमान—एक-दूसरे के साथ-साथ, अगल-बगल चलते हैं—चेतन और अचेतन धूप-छांह की भांति एक-दूसरे पर आरोपित रहते हैं।

उपन्यास में 1942 का आंदोलन, विदेशी सत्ता के विरुद्ध शक्तिशाली जन-विद्रोह— फरवरी 1946 का, 16 अगस्त 1946 का मुस्लिम लीग का "डाइरेक्ट एकशन डे" और कलकत्ते में 1947 का विशाल नर संहार, स्वाधीनता प्राप्ति का समारोह— 14-15 अगस्त की मध्य रात्रि को, महात्मा गांधी की हत्या और सभी प्रसंगों के माध्यम से शंकर की कथा अत्यन्त प्रभाव-पूर्ण आकर्षक शैली में प्रस्तुत की गई है। और निष्ठावान पत्रकार के रूप में उसका मोहभंग भी इन शब्दों में अभिव्यक्त हुआ है— "स्वतंत्र पत्रकारिता का युग इस देश में खत्म हो गया, कम-से-कम दस-बीस साल के लिए। थैलीशाहों के... या राजनीतिक पार्टियों या उनके गुटों के अखबारों के मुकाबले... स्वतंत्र विचारों को व्यक्त करने वाले सम्पादकों का युग चला गया...।

पूरा का पूरा उपन्यास चित्त-विश्लेषण विज्ञान की सटीक व्याख्या है जिसमें यथार्थ और कल्पना का समन्वय है। संस्मरण और इतिहास का संयोजन है। कथानक और शैली दोनों ही दृष्टियों से यह बड़ी महत्वपूर्ण औपन्यासिक कृति है। बहुत अन्तराल के पश्चात हिन्दी जगत में ऐसी रचना पढ़ने को

उपलब्ध हुई है। निश्चय ही यह उपन्यास "क्लासिक" श्रेणी का उपन्यास है।

बन्द दरवाजे : लेखक : सुमंगल; प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली; मूल्य : 50 रुपये; पृष्ठ : 522।

द्वारा : विनीत शर्मा,
27, सीनियर छात्रावास, रवीन्द्रनाथ ठाकुर मेडिकल कालेज,
उदयपुर-313001 (राजस्थान)

पोट्टेक्काट की श्रेष्ठ कहानियां

देवेन्द्र उपाध्याय

मलयालम के प्रसिद्ध कथाकार श्री एस० के० पोट्टेक्काट की दस श्रेष्ठ कहानियां इस संग्रह में संकलित की गई है। साहित्य अकादमी, केरल साहित्य अकादमी, मद्रास सरकार तथा भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित श्री पोट्टेक्काट ने स्वतंत्रता आंदोलन में भी हिस्सा लिया।

श्री पोट्टेक्काट की कहानियों के पात्रों का वर्ग असीमित है। इनमें एक ऐसी विविधता है जो जीवन के विभिन्न रूपों, स्थितियों और अनुभवों से होकर गुजरती हैं। लेखक की देश-देशान्तर की यात्राओं का उनकी कहानियों पर व्यापक प्रभाव पड़ा है इसलिए दक्षिण भारत के गांवों से लेकर दक्षिण अफ्रीका तक का वृतान्त इनमें मिलता है। संग्रह की कहानियों के बारे में यह कहा जाना गलत न होगा कि ये जीवन की कहानियां हैं।

"पागल कुत्ता" में किरन नामक एक गरीब की विवशता का चित्रण किया गया है, जो कुछ दिन के लिए राशन के जुगाड़ के लिए अपने बेटे को खुद काटकर पागल कुत्ते द्वारा काटे जाने का लाभ उठाता है। लेकिन पागल कुत्ते के काटे जाने के इंजेक्शन लगने से चात्तन ने दम तोड़ दिया। कचहरी में अफ्रीका में बसे एक गोरे-साली और काप्पीरी कबीले की एक युवती की प्रेम कहानी है। उसी मि. साली को एक दिन गोरे गोली का शिकार बना देते हैं। 'वैज्ञानिक की पत्नी" प्रेम के उन्माद की त्रासदी है जिसमें अपने प्रेमी को पाने के लिए वैज्ञानिक की प्रेमिका ने प्रयोगशाला में विस्फोट कराया जिससे वह अंधा हो गया। वैज्ञानिक जब अन्तिम सांसें ले रहा है तो उसकी पत्नी (पूर्व प्रेमिका) उस रहस्य को खोलना चाहती है लेकिन नहीं....। मृत्यु से पूर्व वैज्ञानिक उस पर कार्यभार का लाछन लगा देता है। "शिकारी" मध्य अफ्रीका की रोमांचक गाथा है। "पुरस्कार" में मालिनी को पाने के लिए कम्पाउंडर लक्ष्मण उसके पति को गलत इंजेक्शन लगा देता है जिससे उसकी मौत हो जाती है। लोगों ने मालिनी से लक्ष्मण की शादी की चर्चा तेज कर दी तो एक दिन मालिनी ने आत्महत्या करली— आखिरी क्षण में लक्ष्मण को उसकी सुई का भेद बताना वह न भूली। "वधू" एक मार्मिक कहानी है गोपी की— जिसे पाना चाहता है उसकी शादी हो जाती है और दूसरी बार उसी "प्रेमिका" की मौत।

"कलाकार" एक कलाकार की करूण गाथा है जो वृद्धावस्था में मजबूरी में अपनी कला दिखाता है लेकिन यही कला उसे जेल पहुंचा देती है। "पुराना कर्ज" में वाटसन नामक व्यक्ति के जिन्दगी के अद्भुत रहस्य का वृतातं है, तो "धर्मशालय" में एक संगीतकार की मर्मान्तिक गाथा है, जो सपनों के संसार में अनजाने जी रहा है "सेतु" संग्रह की आखरी कहानी है, प्रो० श्री कुमार के अकेलेपन की। अकेलेपन की दहशत उसकी जान ले लेती है।

संकलन का संपादन कथाकार श्री शानी ने और अनुवाद पी० कृष्णन ने किया है। संकलन की इन कहानियों में श्री पोट्टेक्काट के जीवन के प्रति व्यापक अनुभवों, दृष्टियों और पहचान से परिचय होता है।

"जनयुग" दैनिक,
5-ई, रानी झांसी रोड, नयी दिल्ली-110055,

जंगल से गुजरता शहर

दिविक रमेश

बिना कोई भूमिका बांधे मैं कहना चाहूंगा कि डा० शशि शर्मा काफी वर्षों से कविता लिख रही हैं। प्रस्तुत पुस्तक की भूमिका स्वरूप "अपनी बात" के अन्तर्गत कवियत्री ने अपनी कविता के सदर्भ में बहुत से ऐसे शब्दों का इस्तेमाल किया है जो "नई कविता" के "एकेडेमिक" शब्द हो चुके हैं। शायद इसीलिए उन्होंने अपनी कविता प्रक्रिया के बारे में भी यह लिखा है कि "मेरे नितान्त निजी क्षणों को प्रतिक्रियाएं हैं।" मुझे खुशी यह है कि इस संग्रह में कविताएं ऐसी जरूर हैं जिन्हें अच्छा भी कहा जा सकता है और पसन्द भी किया जा सकता है। ऐसी कविताएं सामाजिक संबधों के बीच मानवीय टकराव और मानवीय संवेदनाओं की ही कविताएं हैं।

इस सग्रह में नि:सन्देह विविध मानसिकता की कविताएं हैं क्योंकि वे जीवन के विविध क्षेत्रों से ताल्लुक रखती है। यहां धूर्त नेताओं पर भी करारे व्यग्य हैं और उनकी वजह से उभर कर आने वाली विडम्बनापूर्ण स्थितियों पर भी (तमाशा)। तो भी कविता संग्रह की मूल स्वर आज की "नारी"—खासकर—पत्नी के रूप में जागरूक नारी का यथास्थिति पूर्ण दु:खदचित्र्य तथा उसके हक के लिए सही मानसिकता के निर्माण का ही है। खूबी यह है कि शशि ने ऐसी नारी की विडम्बनापूर्ण हैसियत को रोजमर्रा की घरेलू यानी मामूली सी दिखने वाली घटनाओं/

बातों के बीच से पकड़ कर फोकस किया है। मसलन "आम्र-पाली" कविता ही को लें। आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र कामकाजी पत्नी जब "पुरुष प्रधान समाज की मानसिकता वाले पति के कमीज का बटन नहीं टांक पाती और वह भी इसलिए कि उसे काम पर जाने में कदाचित देर हो रही थी तो पति इस हद तक क्रूर हो जाता है कि "घर की नीव में दरार ही पड़ जाती है।" और इस पर भी बिडम्बना यह है कि वह "बर्तन मांजते हाथों में मेंहदी की गंध ढूढ़ना चाहता है" और नारी के इस चीत्कार को वह शायद कभी नहीं सुन पाता कि "बटन टांकती/मैं/आम्र-पाली बनने के प्रयास में कोई भी धरातल नहीं जुटा सकी।" अच्छी बात यह है कि शशि मरवोल उड़ाने या व्यंग्य करने के रास्ते से विडम्बनापूर्ण स्थितियों को लाती है न कि गाली-गलोंच के रास्ते से। नैराश्य या थकनटूटन वाली "घुटन" जैसी कविताओं को अपेक्षा जरूरत शायद ऐसी पंक्तियों वाली कविताओं की अधिक थी—"पैरों के नीचे की/कंकरी/और/सिर के ऊपर की तपती/धूप ने बना दिया मुझे/एक लोह स्तूप—। जो अब किसी भी आंधी में/गिरेगा/टूटेगा नहीं।" खैर कविताओं में पैशनी, विरोध, नारे-बाजी का स्वर नहीं है—यह बहुत बड़ी बात है। "नींव का पत्थर कविता आगामी पीढ़ी के समक्ष एक जरूरी प्रश्न रखती है, अब मैं क्यू नहीं हूं।"

अन्य कई संकलनों की तरह इसमें भी पसन्द आने लायक कविताएं भी हैं और न पसन्द आ सकने वाली कविताएं भी हैं। संकलन का महत्व अच्छी कविताओं-या कई कविताओं की वजह से ही हुआ करता है। इस दृष्टि से यह संकलन कम महत्व का नहीं है।

पुस्तक विवरण : जंगल से गुजरता शहर, लेखक : डा० शशि शर्मा, तक्षशिला प्रकाशन, प्रथम सस्करण-1982, मूल्य-20 रुपये, पृष्ठ-80

बी-57, अमर कालोनी, लाजपत नगर, नई दिल्ली।

नुक्कड़ नाटक . . . .

(पृष्ठ 23 का शेषांक)

और शिल्प-विधान होता है। इसके चौतरफा संयोजनों और तीव्र गतियों में त्वरा तथा मुद्राओं में स्वच्छंदता होती है, गीतों में ऊष्मा और दो टूक भाषा में बोले गए सम्वादों में सहज आक्रा-मकता एवं ऊर्जा। रूप एवं वस्त्र—सज्जा लगभग नहीं के बराबर, कोई मंच (प्रेक्षागृह), कोई दृश्य-बंध नहीं। आडम्बर और ताम-झाम से एकदम मुक्त। आम आदमी की जिन्दगी की दैनिक समस्याओं और तकलीफों का जीवन्त प्रस्तुतीकरण ही इस नाटक के दर्शकों की सक्रिय भागीदारी को उत्साहित एवं प्रेरित करता है। अतः स्पष्ट है कि हर कोई नाटक सड़क पर प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। पिछले दिनों दिल्ली में हुए कई नुक्कड़ नाटकों की असफलता का प्रमुख कारण यही था। इस संदर्भ में 1964 में न्यूयार्क के "मोबाइल थियेटर" द्वारा सड़क पर प्रदर्शित "हैमलेट" के ईंट-पत्थर की बौछार से हुए स्वागत को हमेशा याद रखना चाहिए। उसके निर्देशक जोसेफ पैप ने स्पष्टतः स्वीकार किया था कि, "वहां शेक्सपियर का नाटक खेलना गलत था। अब राजनैतिक परिस्थितियों में भारी परिवर्तन हो चुका है अतः जनता को "हैमलेट" की नहीं उनके अपने जीवन से सम्बद्ध नाटक की जरूरत है।" निःसन्देह आज की परिस्थि-तियों में ब्रेख्त हमारे लिए सबसे ज़्यादा प्रासंगिक और सार्थक नाटककार है। परन्तु जर्मनी और भारत के आम आदमी के मनोविज्ञान और भाव-तंत्र को समझे बिना हम उसका भी अपने लिए सही प्रयोग नहीं कर सकते। ब्रेख्त अपने दर्शक की समझ और बुद्धि को झकझोरना चाहता है जब कि भारत का व्यक्ति सोचने का काम भी हृदय से लेता है। अतः बुद्धि के बजाए मन को उद्धेलित करने वाली रचना ही उसे अधिक प्रभावित करती है। भारतीय आम-आदमी के लीला-प्रिय मन को समझे बिना हम उसे बहुत दूर तक प्रभावित नहीं कर सकते। हां सार्थकता और मनोरंजन तथा कलात्मकता और व्यावसायिकता के सही समीकरण की शिक्षा हमें अवश्य ही ब्रेख्त से ले लेनी चाहिए। यदि सीधे जुड़ना कठिन प्रतीत होता हो तो उसी के माध्यम से हम अपनी समृद्ध लोक रंग-परम्परा को भी पहचानने और स्वी-कारने में मदद ले सकते हैं।

रचनात्मकता का कोई बना बनाया फार्मूला नहीं होता। कला के प्रतिमानों की दृष्टि से भी हमें एक आभिजात्य सौन्दर्य-बोध के परम्परावादी नाटक और एक जनवादी अनगढ़ नुक्कड़ नाटक के बीच अनिवार्यतः अन्तर करना ही होगा। परन्तु किसी भी हालत में हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि स्वरूप और उद्येश्य की तमाम विभिन्नताओं के बावजूद नुक्कड़ नाटक भी मूलतः और अन्ततः है नाटक ही; और पीटर ब्रुक के शब्दों में, "यह सम-झना-मानना भ्रम है कि थियेटर से कोई क्रांति लाई जा सकती है—कोई आन्दोलन खड़ा किया जा सकता है। हां, इससे धीरे-धीरे जागरूकता और चेतना अवश्य पैदा की जा सकती है—वही इसका मकसद भी है। अन्याय, अत्याचार और शोषण को भाग्य मानकर चलने वाले असंख्य लोगों को शिक्षित किया जा सकता है—सच बताया और दिखाया जा सकता है। परन्तु मैं सीधे-सीधे उपदेश, नारेबाजी या प्रचार के पक्ष में नहीं हूं। आप कौन सा और कैसा मार्ग अपनाएं, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि आप कहां, किस वक्त और किन लोगों के बीच प्रदर्शन कर रहे हैं?"

—जयदेव तनेजा, निल 63 ए. मालवीय नगर
नई दिल्ली-110017

पंडित श्याम नारायण पाण्डेय का अभिनन्दन

डा० देवी प्रसाद कुंवर

वीर रस के प्रसिद्ध कवि पंडित श्याम नारायण पाण्डेय का अभिनन्दन, उदय प्रताप कालेज में ठाकुर प्रसाद सिंह की अध्यक्षता में किया गया। आरंभ में डा० विश्वनाथ प्रसाद ने श्री श्याम नारायण पाण्डेय का अभिनन्दन करते हुए कहा कि परतंत्र भारत में जहां एक ओर गान्धीवादी मूल्यों को लेकर कुछ राष्ट्रीय धारा के कवि कवितायें लिख रहे थे वहीं श्री श्याम नारायण पाण्डेय ने राजपूत शौर्य गाथा और बलिदान को आधार बनाकर अपने काव्यों की रचना की।

समारोह के अध्यक्ष श्री ठाकुर प्रसाद सिंह ने कहा कि पाण्डेय जी तथा बच्चन जी ने हिन्दी में कवि सम्मेलनों की जड़ को बनाया। इन कवियों ने काव्य पाठ के द्वारा सामान्य जनता को सामूहिक रूप से कविता के रसा स्वादन के लिए प्रेरित किया। लेकिन बच्चन जी ने जहां समस्याओं से हट कर व्यक्तिवादी गीतों की रचना की वहीं पाण्डेय जी ने समाज के सांस्कृति की रचना के लिए काव्य रचा।

पाण्डेय जी ने अपने अभिनन्दन का उत्तर देते हुए कहा कि जिन मूल्यों को लेकर इस उदय प्रताप कालेज की स्थापना हुई उसी जीवन दृष्टि को मैंने अपने काव्य का आधार बनाया। इस अवसर पर उन्हें कालेज की ओर से डा० विश्वानाथ प्रसाद ने एक मान पत्र भी समर्पित किया।

इसके पश्चात् नवगीत के पुरोधा श्री ठाकुर प्रसाद सिंह की अध्यक्षता में अखिल भारतीय कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें सुप्रसिद्ध गीतकार नीरज, एकता शबनम, डा० शम्भूनाथ सिंह, डा० सुरेश व्यथित, श्री कृष्ण तिवारी, अजीत श्रीवास्तव एवं शैफाली तथा बीर रस के प्रसिद्ध कवि पंडित श्याम नारायण पाण्डेय, चन्द्रशेखर मिश्र तथा हास्य रस के कवि श्री दान बहादुर सिंह, 'सूंड' चकाचक बनारसी, घायल हाथरसी, श्री कैलाश गौतम और कमलनयन मधुकर की कविताओं को श्रोताओं ने भरपूर सराहा।

एस-2/141, डिठोरी-महाल, वाराणसी

छायावाद के प्रवर्तक मुकुटधर पांडे का सम्मान

—देवी प्रसाद वर्मा

छत्तीसगढ़ हिन्दी साहित्य सम्मेलन का 15वां अधिवेशन रायगढ़ में 25 एवं 26 दिसम्बर को सम्पन्न हुआ। अधिवेशन की अध्यछता श्री गोविंदलाल बोरा ने की तथा उद्घाटन श्री वी० आर० यादव मंत्री मध्यप्रदेश शासन ने किया।

इस अवसर पर छायावाद के प्रवर्तक श्री मुकुटधर पांडें का सम्मान किया गया श्री मुकुटधर पांडे ने छायावाद के विषय पर विशद प्रकाश डाला। उन्होंने यह स्थापित किया कि स्वच्छन्दतावाद पर अंग्रेजी का प्रभाव अधिक था न कि बंगला था। आपने कहा कि बंगला का प्रभाव हिन्दी पर आया पर क्या कबीर की सौ कविताएं संकृहित करने वाले महाकवि रवीन्द्र पर हिन्दी का प्रभाव नहीं पड़ा था। सम्मेलन की ओर से डा० कुंतल गोयल की कथा संग्रह को प्रथम पुरस्कार दिया गया।

छत्तीसगढ़ विभाग हिन्दी, साहित्य सम्मेलन.
रायपुर (म० प्र०)

पिछले दिनों सुप्रसिद्ध फिल्म अभिनेत्री वैजयंती माला को 'संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। ऊपर चित्र में वैजयंती माला राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह से पुरस्कार ग्रहण करते हुए।

केकरे के कोलाज चित्रों की प्रदर्शनी

घनश्याम वर्मा

दैनिक उपयोग में आने वाले समाचार पत्र पत्रिकाएं और अन्य पठनीय साहित्य जब पुराना हो जाता है तो उसे रद्दी की संज्ञा दे दी जाती है। परन्तु साहित्यकार, पत्रकार लेखक और विद्यार्थी उस रद्दी में से अपने-अपने उपयोग का मैटर संदर्भ सामग्री के रूप में संजो लेते हैं। भला कलाकार इस काम में क्यों पीछे रहने लगा। वह भी उस रद्दी में से आकर्षक चित्र काट लेता है जिन्हें अपनी कल्पना और तकनीक के आधार पर चिपका देता है। और इस प्रकार से तैयार चित्र "कोलाज" या "पेपर कोलाज" नाम से संबोधित किया जाता है।

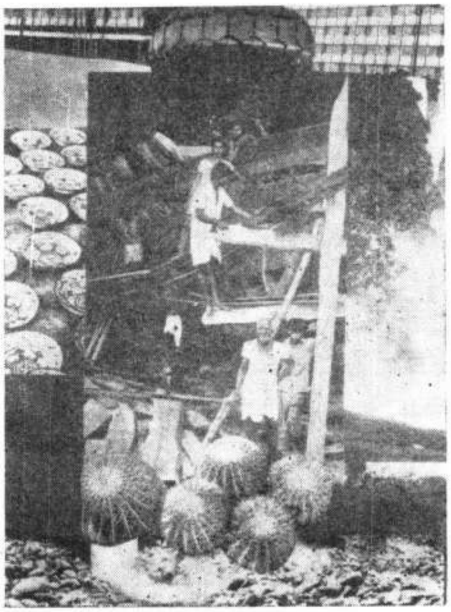

कोटा के श्री सुभाष केकरे ने इस प्रकार के चित्रों का अनूठा संग्रह तैयार किया है जो उनका काफी सराहनीय प्रयास है।

□ उद्‌घोषक सूचना केन्द्र, कोटा (राजस्थान)

जहाक

योगेन्द्र दवे

गत दिनों कमल कला मन्दिर सांस्कृतिक संस्थान, जोधपुर के तत्त्वधान में डा० मोहम्मद हसन के नाटक "जहाक" का मंचन दलपत परिहार के निर्देशन में किया गया।

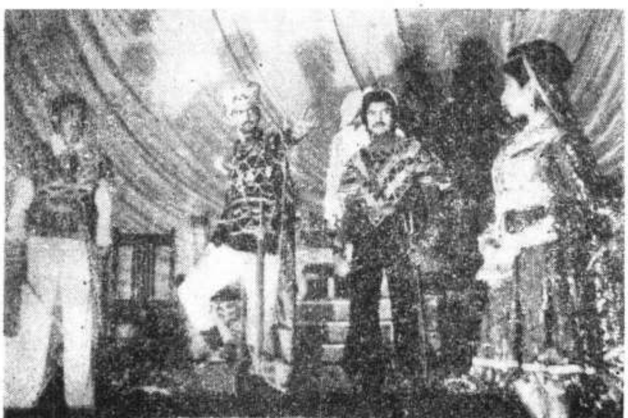

'जहाक' जो कि मजहब, अदब, कानून और तहजीब, सब को अपने अधीन कर मानव मूल्यों को नष्ट करना चाहता है—वैयक्तिकता को सर्वोपरि समझने वाला जहाक अपनी जनता को हाथ का खिलौना बनाने का प्रयत्न करता है—किंतु शोषण के खिलाफ़ आवाज बुलन्द करता है एक गरीब किसान-यह आवाज पूरी कौम की आवाज बन जाती है। सम सामयिक संदर्भों में भी जहाक की प्रस्तुति उत्कृष्ट बन पड़ी,

नौजवान किसान फ़रीदू की भूमिका में शब्बीर हुसैन ने समूचा प्रभाव उत्पन्न किया। जहाक, नौसाबा और बजीर की भूमिकाओं में क्रमश: रमेश बोहरा, गीताभट्टाचार्य और मदन बोराणा ने अपने चरित्र के प्रति आत्मनिष्ठ भाव अपनाने का प्रयत्न किया।

ब्रह्मपुरी-पीपलिया, जोधपुर-342001

प्रतिक्रियाएं

आजकल का फरवरी 83 अंक यह अंक पिछले कई अंकों से कई स्तरों पर अच्छा लगा है। प्रूफ की अशुद्धियां कम हुई हैं। प्रकाशित रचनाओं में सर्व श्री विष्णु प्रभाकर, घनश्याम रंजन, राजकुमार गौतम तथा डा० शेरजंग गर्ग, शशि सहगल और केदारनाथ कोमल की कविताएं अच्छी लगी। उत्कृष्ट छपाई-सफाई के लिए बधाई।

—अमरेंद्र मिश्र,
ए-2 ओल्ड गोविंद पुरा कृष्ण नगर, नई दिल्ली।

जनवरी 83 अंक में डा० विनय के ध्वनिरूपक—'कहीं और' ने विशेष प्रभावित किया। सच, आज पीढ़ियों के बीच की खाई और गहरा गई है—इस समस्या को डा० विनय ने बखूबी चित्रित किया है। कहानियों में—'नाला' (मृदुला अरुण) व 'बर्फ में दबे शरीर' (राजेन्द्र शर्मा) स्तरीय हैं। लेखक से बातचीत क्रम में श्री शानी ने कुछ प्रश्न उठाए हैं—उन पर गम्भीरता पूर्व विचार होना चाहिए। सिर्फ मुसलमान होने के कारण वे उपेक्षित न रह जाएं यह हमें देखना है। श्री गिरिजा कुमार माथुर—कुछ इम्प्रेशन में श्री अजितकुमार ने माथुर के बारे में बहुत ही रोचक जानकारी दी है। जो शायद साक्षात्कार में न मिल पाती। कविताओं में—प्रभाकर माचवे के व्यंग, मधुर मज्मी की गजलें तथा श्याम निर्मम के गीत ने विशेष प्रभाव डाला।

—शिवचरण चौहान, मनेधू—कानपुर-209120 (उ०प्र०)

जनवरी 83 का अंक साहित्य के सामयिक परिवेश में ढली विविध विधाओं की विचारोत्तेजक एवं भावपूर्ण रचनाओं का सजीला पुण्यगुच्छ स्वरूप उभर कर सामने आया है। संपादकीय सामयिक एव चेतना को गहराई तक झकझोरने वाली मुद्दाओं को रोचक ढंग से सामने लाने में सफल है। एक कड़वी सच्चाई को बेहद सुलझे व निखरे ढंग से प्रस्तुत करने हेतु साधुवाद स्वीकारें। आकर्षक साज-सज्जा, उत्तम मुद्रण एवं स्वस्थ रचनाओं के चलते वस्तुतः यह अंक संग्रहणीय बन गया है।

—प्रो० विनय रंजन 'वीन'
रिफ्यूजी कालोनी डालटनगंज-822101 पलामू (बिहार)

फरवरी अंक पढ़ा। पत्रिका अपने में इतना कुछ बटोर कर आपके प्रयास से निश्चित रूप से अपने लक्ष्य को प्राप्त कर हम पाठकों का मार्ग दर्शन तथा समसामयिक मुद्दों की जानकारी देती रहेगी। उषा बाला का लेख "कल के दास-आज के बधक" कविता 'शिरीष के फूल', 'काफी हाउस की शाम' काफी रोचक लगी। बेहतर होता यदि प्रूफ रीडिंग की त्रुटियों की ओर आप थोड़ी और सतर्कता बरतते।

— छेदी लाल,
समाचार विभाग, आकाशवाणी, गोरखपुर

जनवरी 83 अंक पढ़ा। बड़ी प्रसन्नता हुई। जहां आज साहित्यिक पत्रिकाएं व्यावसायिक बनती जा रही है 'आजकल' ग़ैर व्यावसायिक रहकर साहित्य सेवा कर रही है। सभी लेख अच्छे स्तर के लगे।

—हरीश चन्द्र पाण्डे,
255 नया मम्फोर्ड गंज, सुभाष नगर, इलाहाबाद

"आजकल" के जनवरी-फरवरी 83 के अंकों में नवगीत पर श्री राजेन्द्र प्रसाद सिंह, का महत्वपूर्ण आलेख "नवगीत विकास क्रम का एक वस्तुनिष्ठ निरीक्षण" पढ़कर कई प्रश्न मेरे मन में उभरे हैं। नवगीत, क्योंकि, समसामयिक हिन्दी कविता की अत्यन्त, जीवन्त अधुनातन एवं शुद्धतम काव्य-प्रवृत्ति के रूप में अपनी पूरी तेजस्विता के साथ उभर कर सामने आ रहा है, इसलिए मैं इसे नई कविता, प्रगतिशील या जनवादी कविता एवं कोरे पारम्परिक गीतिकाव्य से भिन्न काव्यधारा मानता हूं तथा अपेक्षा करता हूं कि इस नैसर्गिक धारा के प्रवाह को और वेगवान बनाने में "आजकल" अपनी एक विशिष्ट भूमिका निभायेगी।

—राम सेंगर,
स्टेशन अधीक्षक कार्यालय, मध्य रेलवे, कटनी (म० प्र०)

फरवरी 83 अंक मिला। चयन और स्तरीय सामग्री के प्रस्तुतीकरण का इस अंक में भी यथोचित निर्वाह हुआ है। डा० शेरजंग गर्ग की कविता एवं गजल मर्म को भेदती है। कृष्ण सुकुमार व अर्चना श्रीवास्तव की गजलें भी पैनापन लिये हैं।

—फजरूद्दीन बेसर,
मुकाम/पोस्ट साकरस, जि० गुड़गांव-122108

'आजकल' के फरवरी 83 अंक में प्रकाशित लेख 'नवगीत विकासक्रम का एक वस्तुनिष्ठ निरीक्षण' (ले० राजेन्द्र प्रसाद सिंह) नवगीत के विकास और स्वरूप पर एक अच्छी धनात्मक आलोचना है। लेख में नये नवगीतकारों पर बहुत थोड़ी सी सामग्री प्रस्तुत की है, आशा थी विस्तृत विवेचन होता। नवगीत की प्रतिष्ठा के पीछे जहां बौद्धिक वर्ग (प्रगतिवादी कविजन) जी जान से जुटे हुए हैं, वहीं प्रगतिवाद और नवगीत के नाम पर प्रतिभाहीन कूड़ा-करकट लिखकर इसे बोझिल और दूषित भी बना रहे हैं। प्रगतिवादी कवि इस ओर सचेष्ठ रहें, अति आवश्यक है। प्रगतिवादी कवियों के कुछ हल्के और सुबोध ढंग से लिखने का भव्य स्वागत होगा। कुल मिलाकर लेख पर्याप्त सामयिक और संतुलित रहा है।

अर्चना श्रीवास्तव की गजल पसंद आयी। कृष्ण कुमार, शशिसहगल की 'आत्महत्या', यशपाल जैन से वार्ता पर्याप्त पसंद आयी। 'आजकल' की उपयोगिता एवं लोकप्रियता में वृद्धि करने के लिए कुछ विचार स्तम्भ भी प्रारम्भ अवश्य करें।

—राजू चिरगांव,
13, वेस्ट कैम्पस (ओल्ड) एच० बी० टी० आई० कानपुर

Licenced U (DN)-49 to post without pre-payment at Civil Lines Post Office, Delhi. R. N. 701/157

शुक्रवार, 25 मार्च, 1983 को राजधानी के विज्ञान भवन में अंतर्राष्ट्रीय ओलम्पिक समिति के 86 वें अधिवेशन में प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी को ओलम्पिक स्वर्ण पदक से सम्मानित किया गया। चित्र में अंतर्राष्ट्रीय ओलम्पिक समिति के अध्यक्ष जुआन समरांच, श्रीमती गांधी के गले में पांच छल्लों से युक्त स्वर्ण हार पहनाते हुए। श्रीमती गांधी विश्व में यह सम्मान पाने वाली पहली महिला होने के साथ–साथ प्रथम एशियाई भी हैं।

नगर कोली (जि- जयपुर)